...के सदस्य

...दिवाकर श्रीमंत सर
...र बैंकर्स इन्दौर.

...जी M.L.A. O.B.E.
अजमेर ... अध्यक्ष
...ई उपाध्यक्ष
कोषाध्यक्ष
...जौहरी मुंबई
...ज अहमदाबाद
...शास्त्री संपादक
जैन-बोधक, मंत्री मुंबई परीक्षालय ऑ. मंत्री
८ ,, सेठ तनसुखलालजी काला मुंबई मंत्री गो. सि. विद्यालय मोरेना ,,

सदस्य—

९ श्री ब्र. विद्याधरजी वर्णी-आचार्य कुंथुसागर-संघ
१० ,, धर्मरत्न पं. लालारामजी शास्त्री मैनपुरी
११ ,, सेठ व्रजलाल केवलदासजी शाह मुंबई
१२ ,, सेठ चंदुलाल कस्तूरचंद शाह मुंबई
१३ ,, पं. रामप्रसादजी शास्त्री मुंबई
१४ ,, मोतीचंद गौतमचंद कोठारी एम्. ए. फलटण
१५ ,, सेठ काळप्पा अण्णाजी लेंगडे शाहपुर (बेलगाम)

॥ नमः श्रीवीतरागाय ॥

श्री तपोनिधि, विश्ववंद्य, परम पूज्य, विद्वच्छिरोमणि,

आचार्य श्री कुंथुसागरजी महाराज विरचित

मनुष्य कृत्य सार

प्रकाशक—

श्रीमत् सरकार, राय-रायां मही-महेन्द्र, महाराजा-
धिराज, धर्मवीर, प्रजावत्सल, महारावल साहब
श्री लक्ष्मणसिंहजी बहादुर के. सी. एस. आई.
डूँगरपुर—नरेश.

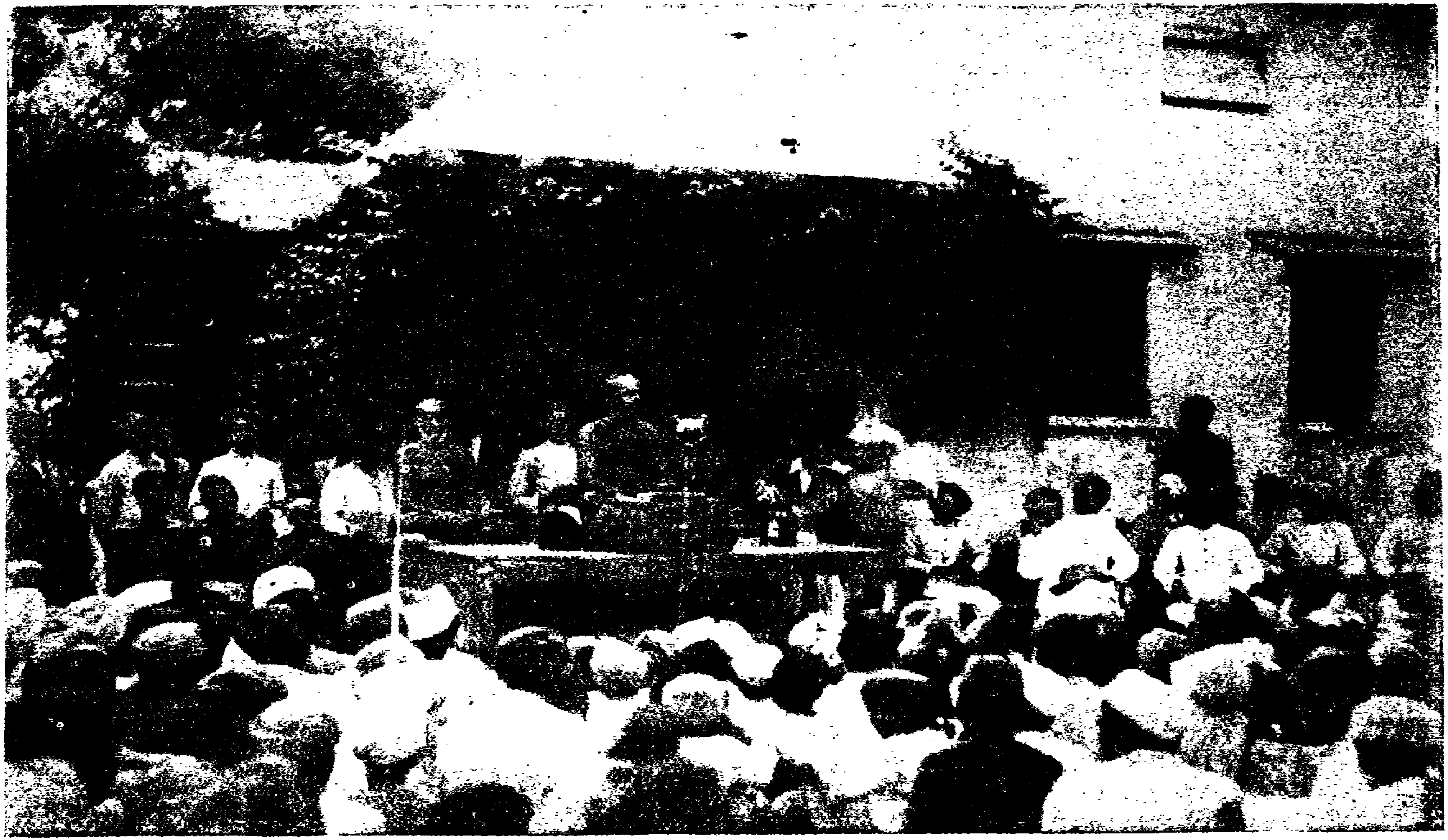
प्रथम बार २०००] [वीर सम्वत् २४६१

श्री आचार्य कुंथुसागर ग्रन्थमाला को १०१) रु०
देने वाले स्थायी सदस्य.

१ श्री दि. जैन मन्दिर जहेर
२ श्री दि. जैन मन्दिर नरसीपुर
३ शा. हेमचंद पीताम्बरदास नरसीपुर
४ सेठ उगरचंद अमथालाल ,,
५ शा. हरजीवनदास नारायणजी जहेर
६ दामोदरदास बहेचरदास ,,
७ शा. शिवलाल हरगोविंददास नरसीपुर
८ परी शिवलाल फतेचंद जहेर
९ ब्र. प्यारीबाईजी हाथरस
१० शा. पुरुषोत्तमदास मगनलाल जहेर
११ शा. भीखालाल रायचंद ,,
१२ शा. फतेचंद दोलचंद ,,
१३ शा. मणिलाल केवलदास ,,
१४ परी अमीचंद देवकरण ,,
१५ परी हरचंद गोरधनदास ,,
१६ शा. नेमचंद तलकचंद नरसीपुर
१७ शा. नेमचंद त्रिभुवनदास ,,
१८ शा. केशवलाल लल्लुभाई ,,
१९ शा. हरीलाल शांतिदास जहेर
२० शा. शिवलाल लल्लुभाई ,,
२१ शेठ साकरचंद जगजीवनदास नरोडा
२२ शा. छोटालाल पीताम्बरदास नरसीपुर
२३ शा. हरीलाल मगनलाल जहेर
२४ श्री दि. जैन मन्दिर विजयनगर
२५ शा. चिमनलाल माईलाल महेलाव
२६ शा. केवलदास राजजीभाई ईडर
२७ शा. हीरालाल फतेचंद सावली
२८ शा. कालीदास नानचंद ईडर
२९ सेठ अगरचंद लखमीचंद कटनी
३० सेठ भोपजी शंभूरामजी मंदसौर
३१ शा. अंबालाल पीताम्बरदास नरसीपुर
३२ शा. मणीलाल जेसिंगभाई अहमदाबाद
३३ हरिचंद वखतादास काडयादरा
३४ चिमनलाल शिवलाल कलोल
३५ चुनीलाल नरोत्तमदास नरसीपुर
३६ दोसी मणिलाल नानचंद ईडर
३७ श्री पार्श्वनाथ दि. जैन मंदिर ,,
३८ दोशी सूरचंद उजमभाई ,,
३९ छगनलाल जेठाभाई पोशीना
४० सि. तोडरमल कन्हैयालाल कटनी
४१ शाह वाडीलाल जगजीवनदास (सुमनलाल वाडीलाल) कलोल
४२ सेठ भोगीलाल मगनलाल जाम्बुडी
४३ सेठ माणिकचंद भाईचंद ,,
४४ सेठ मगनलाल कोदरलाल वडोली

४५ पन्नालाल उमाभाई अहमदाबाद
४६ संकेश्वर मणिलाल जीवराज ईडर
४७ संकेश्वर वीरचंद उदयचंद ,,
४८ मेहता रायचंद माणिकचंद ,,
४९ श्री केसरबाई ब्र. ना. नवागाम
ब्रह्मचारिणी चिमनाबाई मंगूर
५१ सोभागचन्द कालिदास डबका
५२ चचलबाई चुनीलाल करमसद
५३ चन्दुलाल मणिलाल कापडी ईडर
५४ कोदरलाल गुलाबचंद मोडासिया देराल
५५ मगनलाल केवलदास ,,
५६ अमृतलाल तलकचंद ,,
५७ नेमचंद नानचंद गांधी ,,
५८ { शाह पन्नालाल अखेचंद
शाह निहालचंद तलकचंद } विजयनगर
५९ स. सि. गणपतलालजी खुरई
६० शाह पन्नालाल रतनलालजी ओबरी
६१ स. दि. जैन पंच जूना मंदिर सागवाडा
६२ सेठ रामचंदर सुवालालजी वरंगल
६३ स. दि. हुमड जैनपंच पालोदा
६४ श्रीआचार्य कुंथुसागर सरस्वती भवन नवागाम
६५ दि. जैन मंदिर सरस्वती भवन पनागर
६६ सेठ लूणकरण मदनमोहनजी उज्जैन
६७ सर सेठ हुकुमचंदजी K. T. इंदौर
६८ सेठ नगजी अमरचंदजी देवल
६९ सेठ मणिलाल केवलजी देवल
७० गांधी लीलाचंद फतेहचंद जादर
७१ सेठ तेजपालजी छाबडा कोछोर
७२ सेठाणीजी सुखराणीजाबाई खुरई
७३ ब्र. सुमतिबेन पोसीना
७४ शा. भोगीलाल सावत्री
७५ दि. जैन मंदिर जांबुडी
७६ सेठ जोराज हीराचंद आलंद
७७ दि. जैन मंदिर दावोल
७८ शा. फूलचंद ताराभाई पादरा
७९ दि. जैन मंदिर गटोडा
८० ब्र. विद्याधरजी आ. संघ
८१ दि. जैन मंदिर बडगांव
८२ श्री शाह मगनलाल नानचंद सोनासन
८३ ,, मगनलाल पन्नालाल तलाटी दाहोद
८४ ,, रतनबाई दोशी रेवचंद मगनलालनी विधवा नंदपूर
८५ सेठ गणेशलालजी उदयपुर
८६ ,, भट्टारक यशकीर्तिजी महाराज ऋषभदेव
८७ ,, दि. जैन पंच केसरिया
८८ रेवचंद रवचंद रखियाल

८९ गांधी उगरचंद फुलचंद ,,
९० ,, शहा रेवचंद खेमचंद ,,
९१ ,, श्रीमती छगनबाई जीतमलजी उदयपुर
९२ श्रीमान् दाडमचंद खुमजी वखारिया डूँगरपुर
९३ श्री लालचंद मोतीचंद जैन हस्ते टांकुवाड (पाडली) डूंगरपुर
९४ श्री से. कोटडिया भाकरचंदजी और उनकी धर्मपत्नी चंदनबेन की तरफ से सूरजमल कोटडिया डूंगरपुर
९५ चुन्नीलाल गेबजी नागदा डूँगरपुर
९६ श्री से. भीमचंद टोडरमलजी उदयपुर हस्ते लक्ष्मीचंद
९७ ,, से. नवलचंद खूबचंद डूंगरपुर
९८ श्रीमती भोगाबाई हैडमास्टरनबाई मोराजपुरा, सागर
९९ दि. जैन मंदिर समस्त पंच छाणी (वडोदा)
१०० श्रीमन्त सरकार रायरायां, मही-महेन्द्र महाराजाधिराज महारावल श्री सर लक्ष्मणसिंहजी साहिब बहादुरजी दामइकबालहू के. सी. एस. आई. डूंगरपुर-नरेश
१०१ श्री आचार्य कुंथुसागर दिगंबर जैन बोर्डिङ्ग डूंगरपुर
१०२ श्री दि. जैन समस्त पंच उंडा-मन्दिर डूंगरपुर
१०३ ,, से. गोपीलाल भवरीलाल पाटणी लाँगवा
१०४ ,, दि. जैन बीसपंथी कोठी श्री समेदशिखरजी
१०५ श्रीमती केशरबाई जैन रतलाम
१०६ श्री दि. जैन मारवाडी मंदिर शक्कर बजार इंदौर
१०७ ,, से. दुर्गाप्रसाद नानकचंद जैन अबोहर
१०८ ,, से. चंदनलाल हमीरचंद जैन डूंगरपुर
१०९ ,, से. भुरा‌चंद जालमचंद नागदा माथुगामडा (डूंगरपुर)
११० ,, से कुरीचंद जैन डूँगरपुर
,, से. कालीलाल ,, डूँगरपुर
१११ ,, से. गांधी पूनमचंद हेमराजजी डूंगरपुर
११२ शा. रायचंद बेचरदास दाना जहेर
११३ श्रीमान ठाकुर सा. प्रवीणसिंहजी लक्ष्मणसिंहजी दरबार सा. माणिकपुर-नरेश
११४ श्री संघवी दलीचंद हरचंदनो बेवा श्री शरेकूंअरबाई सागवाडा



श्रीमन्त सरकार धर्ममूर्ति श्री लक्ष्मणसिंहजी डूँगरपुर-नरेशके हाई स्कूलमें नरेशके लघुभ्राता नररत्न श्री वीरभद्रसिंहजी दीवान आदि प्रजा-
जनकी समुपस्थितिमें श्री परमपूज्य, विद्वच्छिरोमणि, आचार्यवर्य १०८ श्री कुंथुसागरजी महाराजश्री के जाहिर व्याख्यानका एक दृश्य

※ भूमिका ※

कर्तव्यमेव कर्तव्यं, प्राणैः कंठगतैरपि ।
अकर्तव्यं न कर्तव्यं, प्राणैः कंठगतैरपि ॥

नीति कारों का वचन है कि प्राणों के कंठगत हो जाने पर भी कर्तव्य का पालन करना चाहिये, तथा प्राणों के कंठगत हो जाने पर भी अकर्तव्य नहीं करना चाहिये, अर्थात् कर्तव्य की कीमत प्राणों से भी अधिक है । कर्तव्य का फल प्राणों से बहुत अधिक है ।

मनुष्य होकर भी मनुष्य अपने कर्तव्यों का पालन किये बिना मानवोचित सुख, सुविधा और समृद्धि को नहीं पाता, इसलिये प्रत्येक मनुष्य को अपने प्राथमिक कर्तव्यों का ज्ञान होना बहुत जरूरी है । परोपकारी, निःस्वार्थ दयालु संतजन सदा से मानव समाज के मंगल के हेतु कर्तव्य का संदेश देते आये हैं । आजकल अपने देश तथा समाज में कर्तव्यनिष्ठा घटती जारही है, इसीलिये नाना प्रकार की उलझनों ने जन्म लेकर अनेक आपदायें उत्पन्न करदी हैं, दरीद्रता, रोग, बेकारी, वैमनस्य आदि व्याधियाँ जनता को जर्जरित कर रहीं हैं । मानव समाज में पुनः सच्ची सुख शांति का संचार हो इसी हेतु को लेकर परम-पूज्य आचार्य श्री ने इस ग्रंथ में संक्षेप से उन

जरूरी कर्त्तव्यों का संदेश दिया है जिनका पालन करने से लोक कल्याण अवश्यंभावी है ।

प्रत्येक व्यक्ति, जाति तथा देश, बिना किसी भेद–भाव के इन कर्त्तव्यों का पालन करके उन्नति का अधिकारी हो सकेगा किसी खास जाति के लिये ही यह प्रवचन लाभ दायक हो. ये बात नहीं है, क्योंकि, सर्व सामान्य के लिये, उपयोगी सिद्धान्त और अनुभवों का सार ही इसमें दिया गया है, इसलिये किसी विवाद पूर्ण बात की तो गुंजाइश ही नहीं है । सम्पूर्ण मानव जाति में अपने हिताहित का विवेक जागृत हो, इसी में विश्व का कल्याण है, और यही परम कर्तव्य है ।

इस ग्रंथ में आचार्य श्री ने वास्तविकता से अपना सद्गुरुत्व दिखलाया है क्योंकि आपने अत्यन्त परिश्रम से सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की भावना से लिखा है ।

यह ग्रंथ कोई जाति, कौम, व समाज विशेष को लक्ष्य कर नहीं बनाया है किन्तु सम्पूर्ण प्राणी मात्र के हित के लिये "मनुष्य कृत्य सार" नामक अपूर्व ग्रंथ की रचना की । संसार में ऐसे सद्गुरु व महात्माओं का जन्म विश्व कल्याण के लिये ही होता है । अतः ऐसे निःस्वार्थ विश्वोद्धारक महात्मा का सम्पूर्ण प्राणियों को उपकार मानना चाहिये । इसीसे मानव समाज का उद्धार होगा ।

ग्रन्थ प्रकाशक का परिचय

जिस सूर्यकुल में भगवान श्री ऋषभदेव जैसे धर्मप्रवर्तक, भरत जैसे चक्रवर्ती, हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी, भगवान रामचन्द्र जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम और महाराणा प्रताप एवं शिवाजी जैसे वीर शिरोमणि उत्पन्न हुऐ हैं ऐसे उज्जवल, प्रतापी एवं धर्मनिष्ठ शिशोदिया कुल में इस ग्रन्थ के प्रकाशक श्रीमान् नरेन्द्र मुकुटमणि, आर्यकुल भूषण, न्याय मार्तण्ड, भानुकुल-कमल-दिवाकर, प्रजावत्सल, धर्मवीर, सद्गुरु-भक्त, महि महेन्द्र, महाराजाधिराज, महारावल श्री श्री १०८ श्री सर लक्ष्मणसिंहजी साहिब बहादुर के. सी. एस. आई., का शुभ जन्म स्वर्गीय राजर्षि श्रीमन्त महारावलजी श्री सर विजयसिंहजी साहिब बहादुर के. सी. आई. ई. की भार्या आर्य महिलाशिरोमणि, प्रजावत्सला, सद्गुरु शीला, धर्मनिष्ठा, श्रीमती श्रीदेवेन्द्र कुँवरजी महोदया के उदर से सम्वत् १९६४ फाल्गुण शुक्ला ५ तदनुसार तारीख ७ मार्च सन १९०८ ईस्वी को हुआ। श्रीमान् बाल्यकाल से ही अपने पूज्य पिताजी की तरह धर्मनिष्ठ, न्यायप्रिय, प्रजा पालक और विलक्षण थे। होनहार बिरवान के, होत चिकने पात की कहावत श्रीमान् पर पूर्णतया चरितार्थ होती थी। दूज के चन्द्रमा के समान श्रीमान् सर्व कलाओं से युक्त विद्या एवं चातुर्य्य में बढते रहे। श्रीमान् का बाल्यकाल एवं

प्रारंभिक शिक्षण डूँगरपुर में अपने पूज्य माता पिता की अध्यक्षता में होता रहा। हमारे स्वर्गीय नरेन्द्र मणि के राम-राज्य में प्रजा में सर्व प्रकार आनन्द मङ्गल रहा और नित्य नये धर्म कार्य्य एवं प्रजाहित के कार्यों के स्वर्गातीत सुख का अनुभव हो रहा था स्वर्गीय प्रजापति अपने चार राजकुमार एवं एक राज-कुमारी के साथ सकुटुम्ब सुखपूर्वक कालयापन कर रहे थे। प्रजा उनके सुशासन से अत्यन्त हर्षित एवं आनन्दित थी। किन्तु इस कलिकाल में इस प्रकार के आदर्श नरेश का रहना दैव द्वारा असह्य हुआ और उनकी अल्प आयु [३२ वर्ष] में सम्वत् १९७५ के कार्तिक शुक्ला १२, तदनुसार तारीख १५ नवम्बर १९१८ ईस्वी को यकायक साधारण बीमारी से ही स्वर्गवास हो गया। प्रजा पर महान् वज्रपात हुआ किन्तु प्रजा को सन्तोष देने के लिए विधाता ने हमारे चरित्र नायक पूज्य नरपति को, जो उस समय केवल १२ वर्ष के थे, हमारी आशाओं को पल्लवित करने के लिए हमारा आश्रय-स्थल बनाया। स्वर्गीय नरेश की मृत्यु का दुःख प्रजा के लिए असह्य था किन्तु वर्तमान नरेश ज्यों ज्यों विकसित होने लगे, प्रजा अपने दुःख का भार हलका करती हुई अपने भावी नरपति में आशा करने लगी। प्रजा की यह सदैव कामना रहती थी कि हमारे चरित्र नायक अपने पूज्य पिता की तरह धर्मनिष्ठ एवं प्रजा वत्सल रह कर प्रजा की मनोकामना को पूर्ण करें। हमें यह प्रगट करते हुए

हर्ष होता है कि परम पिता परमेश्वर ने हमारी प्रार्थना को फलीभूत किया और हमारे वर्तमान नरेश पूज्य पिता की तरह सब कलाओं में निपुण हुए।

राज सिंहासन पर आरूढ़ होने पर हमारे नरेश की उच्च शिक्षा का प्रश्न उपस्थित हुआ। श्रीमती विदुषी रत्न राजमाता ने अपने अल्प वयस्क राजकुमारों को अपने निपुण निरीक्षण में लिया और उनकी उचित राज योग्य उच्च शिक्षा का प्रबन्ध किया जाना परमावश्यक हुआ। साथ में हमारी पूज्य राजमाता के सामने यह भी प्रश्न था कि प्रजा के असह्य दुःख में ढाढ़स देकर राज्य का प्रबन्ध यथाविधि चलता रहे। राजमाता एक आदर्श विदुषी महिला रत्न हैं। उन्होंने देश, काल, एवं समयानुसार प्रजा का पुत्रवत् पालन किया और स्वर्गीय नरेश की अनुपस्थिति एवं वर्तमान नरेश की नाबालगी में प्रजा को किसी प्रकार के दुःख का अनुभव नहीं होने दिया और उस महान् वज्रपात का भार स्वयम् अपने हृदय में छिपा कर अपने पूज्य स्वामी के निर्माण किये हुए पथ पर संलग्न रह राज्य का कार्य अत्यंत सुचारु रूप से संचालन किया। हमारे चरित्रनायक की नाबालगी के समय का प्रबंध (Administration) का कार्य अंग्रेज़ अफ़सर की अध्यक्षता में था किन्तु हमारी पूज्या राजमाता को इसके संचालनका मुख्य श्रेय रहा है। राजमाताने समस्त प्रजा

वर्ग पर सम दृष्टि रक्खी और प्रजा भी सब प्रकार से सुखी रही। नाबालगी के १० वर्ष के लंबे समयमें इस राज्य में न कोई महामारी हुई और न किसी प्रकार का दुर्भिक्ष ही हुआ। यह सब स्वर्गीय नरेशकी धर्मनिष्ठता एवं राजमाताकी धर्मपरायणता का फल कहा जाय तो किंचित् भी अत्युक्ति नहीं हो सकती। हम इस प्रसंग पर हमारी परम पूज्या ज्येष्ठ राजमाता के हम पर किये हुए सुशासन एवं उपकारों का आभार प्रगटकर अपने आपको कृत-कृत्य करते हैं एवं श्री जगत्पति जगदीश्वरसे प्रार्थना करते हैं कि वे सकुटुम्ब दीर्घायु रहें।

हमारे पूज्य नरपति का शिक्षण मेयो कालेज, अजमेर में हुआ। श्रीमानका विद्यार्थी-जीवन अत्यंत प्रशंसनीय रहा है। आप योंही विलक्षणबुद्धि थे और अपने गुरुओंका सत्संग पाकर उनकी बुद्धिने और भी अधिक रूप से विकास किया। श्रीमान् ने कई पारितोषिक प्राप्त किये और मेयो कालेज ने आपको Sword of Honour से अलंकृतकर श्रीमान्का सम्मान किया। जैसे श्रीमान् विद्याध्ययन में दक्ष थे उसी तरह खेल-कूद में भी अद्वितीय थे। श्रीमान् अन्य खेलों के साथ २ क्रिकेटके खेल में विशेष प्रवीण हुए। विद्यार्थी जीवनमें ही आप इंगलैंडसे आईहुई क्रिकेट की टीममें चुने गये और उस समय अपने सर्वोत्तम खेलका परिचय दिया। उसके बाद जितनी भी क्रिकेटकी टीमें इंगलैंड व आस्ट्रे-

नियासे अबतक आती रही हैं उनके सामने राजपूताना एवं मध्य भारतकी टीमके नायक (Captain) चुने जाते रहे हैं। श्रीमान् की ही अध्यक्षतामें लार्ड टेनीसन की टीम पर भारतने सर्व प्रथम विजय पानेका गौरव प्राप्त किया।

उच्च शिक्षा प्राप्त करनेके उपरान्त श्रीमान्‌ने राज्य शासनके अनुभव प्राप्ति के हेतु सन १९२७ में विलायतका दौरा किया। श्रीमानके वापस पधारने पर ता० १९ फरवरी सन् १९२८ ई० को राज्य के पूर्णाधिकार सुपुर्द हुए और उस समय से अब तक राज्य में शिक्षा का प्रचार एवं शासन सुधार अनेकानेक रूप में निरंतर होता रहा है जिसका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

श्रीमान की सच्चरित्रता—

आधुनिक कालमें कुछ अन्य नरेशों के विषय में सच्चरित्र होनेके स्थान पर दुश्चरित्र और दुराचारी होनेकी शिकायतें सुनने में आती हैं। राजाके इस प्रकार दुश्चरित्र होनेसे प्रजा पर इसका भारी प्रभाव पड़ता है क्योंकि यह शास्त्रोक्त नीति है कि 'यथा राजा तथा प्रजा'। राजाके दुराचरण से प्रजा भी दुराचारी होती है। केवल अपने कुकर्मों का ही भागी राजा नहीं होता बल्कि उसका अनुकरण करनेवाली प्रजाके सामूहिक व्यभिचारके पापका भी उसको शास्त्रानुकूल भागी होते हुए नरकगामी होना पड़ता है।

गीतामें भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि 'राजा राष्ट कृतं पा' इत्यादिके अनुसार राजा राष्ट्रके पापोंका भी भोक्ता होता है।

उन नरेशों के मुकाबलेमें यह प्रकट करते हुए असीम हर्ष होता है कि हमारे सच्चरित्र नरेश महोदय को यह दोष या दुर्गुण किंचित्‌मात्र भी छू नहीं पाया। श्रीमान्‌को इस घृणित पाप क से स्वयं तो घृणा है ही पर प्रजा में भी व्यभिचारके दोषां पर पूर्ण अप्रसन्नता रहती है और उन्हें न्यायालयों द्वारा महान कठिन दंड दिये जाते हैं जिससे अन्य प्रजाजनों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़े।

नरेन्द्र मंडलमें श्रीमान्‌का उच्च सम्मान—

हमारे श्रीमान् नरेन्द्र—मंडल में प्रस्तावित गुत्थियों को ऐसी सरलतासे सुलझा देते हैं कि मंडलके नरेशों को श्रीमान् की इस युवावस्थामें ऐसी चमत्कारिक बुद्धिमानी पर आश्चर्यान्वित होकर मुक्तकंठसे प्रशंसा करनी पड़ती है। वार्षिक अधिवेशन एवं कार्यकारिणी की बैठकों में श्रीमान के सम्मिलित होने की प्रतीक्षा की जाती है और आपकी सम्मान्य, सर्वोत्तम सम्मतियों का प्रेमपूर्वक सम्मान एवं स्वागत किया जाता है। एक वयोवृद्ध और अनुभवी नरेशके समान श्रीमान्‌ को उपरोक्त चमत्कारिक बुद्धिमानीका ही यह परिणाम है कि हमारे पूज्य नरेश नरेन्द्र मंडलकी कार्यकारिणी समिति (Standing Committee) के सदस्य अपने

राज्य के शुभ कालसे ही अबतक निरंतर निर्वचित किये जा रहे हैं। श्री प्रभुसे प्रार्थना है कि इसी प्रकार श्रीमान् का यश विशेष उन्नतिके साथ इस भूमडलमें सदैव फैलता रहे।

श्रीमान का प्रतिभा सम्पन्न बुद्धिमानी, विचारशीलता और न्यायप्रियता---

शासन कार्य में ऐसे अनेक अवसर उपस्थित होते रहते हैं कि जिनके यथाविधि, न्यायानुकूल निर्णय करने में द्विविधा व कठिनाई प्रतीत होती है। गहन मामलों में वृद्ध और अनुभवी पुरुषों की बुद्धि भी चक्कर खा जाती है। किन्तु हमारे नरेन्द्र महोदय ऐसी कठिन समस्याओं को अपनी कुशाग्र बुद्धि और विचारशीलता से महज में ही सुलझा देते हैं। श्रीमान् इस बात का सदैव विचार रखते है कि उनका कोई फरमान ऐसा न हो कि वह प्रजा को अखरे और राज-धर्म के विरुद्ध हो। विस्तार भय से उन पेचिदे मामलों का यहां दिग्दर्शन नहीं कराया जा सकता। जो नरेश-गण मर्यादा, प्रजा का हानि-लाभ, और राज-धर्म का बिना विचार किये या बिना रक्षा किये नादिरशाही फरमान जारी कर देते है उन नरेशों के लिए हमारे प्रजा हितैषी श्रीमान को यह आदर्श बुद्धिमानी और विशेष कर इस अल्प अवस्था में यह विचारशीलता प्रजा रञ्जकता और शासन दक्षता अनुकरणीय है।

प्राय: देखा व सुना जाता है कि नरेश-गण अपनी दीन हीन प्रजा के सम्पर्क में आने से परहेज करते हैं और उनके लिये कोई ऐसा मार्ग नहीं रक्खा जाता कि वे स्वयं उनकी सेवा में उपस्थित होकर अपनी अर्ज मारूज़ करें वरन उनके विपरीत एक तरफा बात उन कर्मचारियों के द्वारा सुनकर जो सदैव उनके पास आते जाते रहते हैं अपना निर्णय कर देते हैं और प्रार्थी अपना निवेदन उनके कानों तक पहुंचा नहीं पाते। किन्तु हमारे नरेश अत्यन्त न्यायप्रिय हैं और विशेषतया दीन दुखी प्रजाजनों को कई प्रकार के ऐसे अवसर प्रदान करते हैं कि वे अपने हृदय की बात अपने स्वामी की सेवा में समर्पित कर सकें।

श्रीमान् का शिक्षा-प्रेम--

श्रीमान के राज सिंहासनासीन होने के पूर्व राज्य में सिर्फ मिडिल कक्षा [Middle Class] तक की शिक्षा का प्रबन्ध था इससे आगे पढ़ने के लिये विद्यार्थियों को बाहर जाना पड़ता था। विद्याध्ययन का व्यय सर्वसाधारण के लिये असह्य था और इस कारण शिक्षा प्रचार में भारी रुकावट रहती थी। श्रीमान् ने दया फ़रमा कर इस कठिनाई को सहज ही में सरल कर दिया और राजधानी में हाई स्कूल की शिक्षा का प्रबन्ध हो गया।

अपने पूज्य प्रातःस्मरणीय स्वर्गीय पिताश्री की भांति हमारे नरेन्द्र महोदय की सदैव यह भावना रही है कि उच्च शिक्षा का अधिक प्रचार हो और इस हेतु कई विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां (Scholarships) देकर बाहर न्याय (Law), वाणिज्य (Commerce), इंजीनियरिंग (Engineering), कृषि (Agriculture), पुलीस (Polic) इत्यादि शिक्षा प्राप्त करने भेजे जाते रहे हैं।

इस उच्च शिक्षाके प्रचार के अतिरिक्त ग्रामीण जनतामें भी शिक्षा का प्रचार करने में श्रीमान संलग्न रहते हैं। राज्य के कई ग्रामोंमें और भीलोंकी बस्तियों में राज्य की ओर से स्कूल खोले गये हैं। कई जगह कृषक कृषि-बालक अपने के कार्य के कारण दिन को स्कूल में नहींजा सकते हैं उनके लिये रात्रि-पाठशालाएं खोली गई हैं। पुस्तकों की शिक्षा के साथ २ ग्रामीण बालकों को रुई कातना, कपड़ा बुनना इत्यादि की भी शिक्षा दीजाती है।

श्रीमान् स्त्री-शिक्षा के भी बहुत पक्षपाती हैं। राजधानी के अलावा अन्य गांवोंमें भी कन्या विद्यालय चल रहे हैं। इस वर्ष राज्यकी ओरसे धार्मिक एवं संस्कृत शिक्षा के लिये भी विद्यालय खोला जा रहा है। वास्तवमें श्रीमानका यह आदर्श विद्यादान सब दानोंसे उत्कृष्ट, कल्याणकारी व प्रजा को सर्व प्रकार से सुखी व

उन्नत करनेवाला है। हमारे धर्मशास्त्रों में भी विद्यादान सर्वोत्कृष्ट दान बताया है। यथा—

> अन्नदानात्परं नास्ति, विद्यादानं ततोधिकम्।
> अन्नेन क्षणिका तृप्तिस्तेन जीवन्ति सर्वदा॥

श्रीमान के अन्य प्रजोपयोगी कार्य—

जिस प्रकार डूंगरपुर राज्य में श्रीमान के सुशासन में शिक्षा की उन्नति हुई है उसी प्रकार अन्य प्रजोपयोगी विभागों में भी उन्नति हुई है। राजधानीमें एक बहुत विशाल अस्पताल (Hospital) है जिसमें पूर्ण सुसज्जित दवाखाना और ऑपरेशन थियेटर हैं। इसके अतिरिक्त आयुर्वेदिक औषधालय और यूनानी हकीम भी हैं। राजधानी के बाहर गांवों में दवाखाने हैं। घूमने वाला दवाखाना (Travelling Dispensary) भी योग्य वैद्यों की अध्यक्षतामें संचालन की जा रही है और ग्रामीण पाठशालाओंके अध्यापकों द्वारा दवाइयां वितरण कराई जाती हैं।

राजधानीमें पीनेके पानीका गरमी के मौसममें अक्सर कष्ट रहता था। स्वर्गीय दयालु नरेशने प्रजाकेलिये भविष्य में पानीके कष्टका अनुभवकर एवं कृषि की सिंचाई के लिये राजधानी में ७ मीलकी दूरीपर 'ऐडवर्ड सागर' नामक तालावका निर्माण कराया

था। वहां से नहर द्वारा पानी राजधानी में लाये और नल द्वारा घरोघर पहूँचानेका कार्य श्रीमानके सुशासनमें हुआ। इसके अतिरिक्त शहरमें बिजली का प्रबंध किया है जिससे प्रजाको अत्यन्त लाभ मिल रहा है।

संवत् १९९३ के साल में इस राज्यमें दुष्काल पड़ा। उस समय हमारे उदार नरेशने अपने कर्तव्यका यथाविधि पालन किया। अपनी दीन-हीन कृषक प्रजाके लिये गांवों २ में अन्न-क्षेत्र खोले गये। उन्हें आर्थिक सहायता पहूँचाने, सड़कें बनाने एवं तीन बड़े बड़े तालाब बंधवानेका कार्य आरंभ किया गया जिससे उस कठिन समयमें प्रजाजनोंको रोज़गार मिले और भविष्य में वे सड़कें और तालाब प्रजाके हितके साधन बनें। इसके अलावा राज्यकी अध्यक्षतामें एवं ग़ैर सरकारी संस्थाओंको भारी आर्थिक सहायता देकर गांवोंमें कई कुएँ खुदवाये गये और गांवाइ तालाब बँधवाये गये। इतना ही नहीं लेकिन उस वर्ष कृषक प्रजासे लगान लगभग आधें के माफ़ फ़र्मा अपने प्रजा-पालन के कर्तव्य की उच्च कोटि का परिचय दिया। इस अकाल के दूसरे ही वर्ष अतिवृष्टि के कारण प्रजा की बहुत हानि हुई। किन्तु हमारे दयालु महारावल साहब ने खुशी खुशी यह भार भी सहनकर प्रजा के प्रति अपने अनुपम प्रेमका परिचय दिया। लोगों को आर्थिक सहायता एवं कबाड़ा इत्यादि देकर घर, तालाब, कुएँ इत्यादि बनवा दिये और जिनके खेत खराब हो गये थे उनके लगान माफ़ फ़रमाये।

इस प्रकार हमारे नरेश ने अपनी प्रिय प्रजा के कल्याणार्थ अनेक उपकार के कार्य किये हैं जिसके लिये प्रजाजन अत्यंत आभारी हैं और श्री प्रभू से प्रार्थना करते हैं कि श्रीमान् का सुशासन हमारे पर सदैव के लिये बना रहे।

श्रीमान का पब्लिक जीवन जितना ऊँचा एवं आदर्श है, उनका प्राइवेट जीवन भी उतना ही सरल पवित्र और प्रिय है। साधारण व्यक्ति से भी श्रीमान् का वार्तालाप बहुत ही सरल, मिष्ट, सभ्य व अभिमान रहित होता है। श्रीमान् के इन सद्गुणों को वह मनुष्य अच्छी तरह जान पाया है जिसको एक बार भी श्रीमान से वार्तालाप करने एवं सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। श्रीमान का वार्तालाप ऐसी सरलता व स्पष्टता से होता है और मुखारबिंद में ऐसा मृदु हास्य रहता है कि उसमें कोई व्यक्ति राज्याभिमान की गंध का लवलेश नहीं पासक्ता। इसके अतिरिक्त श्रीमान के दान भी अनुपम एवं प्रशंसनीय हैं। अपने निजी कोष (Privy Purse) से एक स्थायी रकम परोपकार में लगाई जाती है। यह दान राज्य की सीमा में ही सीमित नहीं है किंतु राज्य के बाहर दूर २ प्रान्तों में अनेक विद्यालयों अन्नक्षेत्र, सिद्धक्षेत्र इत्यादि को दिये जाते हैं। श्रीमान की इन उदारता एवं अलौकिक परोपकार के अनेकानेक कार्यों का वर्णन इस संक्षिप्त परिचय में किया जाना असंभव है।

श्रीमान् महारावल साहब के परम पूज्य जनक व जननी की उदारता, धर्मनिष्ठता, लोकप्रियता का संक्षिप्त परिचय ऊपर दिया गया है। यही समस्त सद्गुण श्रीमान् की विमाता में भी विद्यमान हैं और इन्ही सद्गुणों के द्वारा उनकी फूलवाड़ी पल्लवित एवं कुसुमित है। श्रीमान महारावल साहब के तीनों लघु भ्राता श्रीमंत परम आदरणीय महाराज श्री वीरभद्रसिंह जी M. A. (Oxon) श्री नागेन्द्रसिंह जी B. A. (Cantab) Bar-at-Law I. C. S., एवं श्री प्रद्युम्नसिंह जी M.sc (Ag.) सुशिक्षित परम उदार तथा धर्म-निष्ठ हैं। प्रजा पालन में उनका हार्दिक एवं बुद्धिमत्ता पूर्ण सहयोग है। आपकी भगीनी श्रीमति अखंड सौभाग्य-वती श्री रमाकुंवरी जी महोदया सौराष्ट्र प्रांत स्थित वांकानेर राज्य व कुटुम्ब की प्रिय एवं आदर प्राप्त युवराज्ञी हैं। जो महान् एवं आदर्श गुण श्रीमान् की माताओं में स्थित है और जिनके फल स्वरूप श्रीमान् ने इस उच्चकोटी का व्यक्तित्व प्राप्त किया है तदनुसार वे समस्त अनुकरणीय सद्गुण हमारी परम पूज्य, राजमहिषी, महिलारत्न, अखंड सौभाग्यवती श्रीमति श्री महारानी जी महोदया में विधाता ने प्रदान किए हैं यह हमारा अहोभाग्य है और इससे सोने में सुगंध वाली कहावत पूर्णतया चरितार्थ होती है श्रीमान् के पुण्य प्रताप से वंशवृद्धि करने वाले होनहार, कुल भूषण कुल-दीपक तीन राजकुमार

श्रीमान् महामाननीय महाराज कुमार श्री महिपालसिंहजी बहादुर श्रीमान् जयसिंहजी और श्रीमान् राजसिंहजी हैं। चार राज-- कुमारियां श्रीमति श्री राजेन्द्रकुंवरी जी, श्री सुशीलकुंवरी जी श्री हेमन्तकुंवरीजी और श्री कृष्णाकुंवरीजी हैं। यह सुसंतति समस्त परिवार एवं प्रजाजनों को आनंद देने वाली हैं राजमहलों की शोभा बढ़ा रही है।

हे महाभाग ! आप श्री ने पूज्यपाद, तपोनिधि, विश्ववंद्य, विद्वच्छिरोमणि आचार्यवर श्री १०८ श्री कुंथुसागर जी महाराज के जन्म दिवस के दिन (कार्तिक शुक्ला २) हमेशा के लिये प्रति वर्ष अहिंसा दिन समस्त राज्य में घोषित किया है। इससे आपने अटूट पुण्य तो कमाया ही है और इस महान उत्कृष्टचार्य से आपका प्राणीमात्र के ऊपर हृदयग्राही दया का परिचय मिलता है। और इस मनुष्य कृत्यसार ग्रंथ को अपने निज द्रव्य से छपवा कर आत्म एवं विश्व कल्याण करने वाले साहित्य के प्रति आपका कितना अगाध प्रेम है सो हे राजन ! यह सहज ही में मालूम पड़ता है। तथा श्रीमान ने व श्रीमान की प्रिय प्रजा ने आचार्य संघ की सेवा की है सो चिर स्मरणीय है। तथा हे राजन ! आपके कुटुम्ब वर्ग को तथा आप श्री व आपके कृत्य को देखने से भगवान रामचन्द्रजी, श्रीमान जनक राजा, श्रेयांस राजा, नरेश जीवन्धर कुमार, धर्मराजा, दानवीर

कर्णा इत्यादि महान् पुरुषों का स्मरण होता है । इसलिए धन्य है राजन । इसी प्रकार विश्व एवं आत्म कल्याण करते हुए और प्रजा का पालन करते हुए इस भूमण्डल पर सकुटुम्ब चिरंजीव रहें और यश एवं ऐश्वर्यशाली बनें, यही हम लोगों की मनोकामना है ।

मिति कार्तिक शुक्ला, १५ वीर सम्वत् २४६९ } श्रीमान् के चरणारविंद चंचरीक, सकल दिगम्बर जैन-समाज की प्रेरणा से—

लेखक—

विजयलाल जैन, [B., Com.]

धन्यवाद समर्पण

इस ग्रन्थ का भाषानुवाद करने में श्रीमान प० गणेशलालजी न्यायतीर्थ ने जो परिश्रम उठाया है तदर्थ हम उन्हें धन्यवाद समर्पण करते हैं ।

श्रीमन्त सरकार डूँगरपुर—नरेश ने इसका प्रकाशन कराकर अपनी सद्गुरुभक्ति एवं उदाराशयता का परिचय दिया है एतदर्थ हम उनके सदा आभारी हैं, और उन्हें कोटिशः धन्यवाद देते हैं तथा प्रूफ़ शोधन आदि कार्यों में श्र महेन्द्रकुमारजी आदि जिन २ महानुभावों ने सहायता दी है उन सब को धन्यवाद देते हैं ।

ब्र. विद्याधर,

आचार्य कुन्थुसागर ग्रन्थमाला.

समर्पण

क्षमाकृपा शांति दया समुद्रा; सन्न्याय नीत्यादि विभूषिता: भो ।
विदेहिनो लक्ष्मणसिंह भूपा:, श्रीपाणिपद्मेषु शिवं करेषु ॥
ग्रंथ; सदाऽयं सुखद: प्रजानां, बोधाय सिद्धयै स्वसुखाश्रितेन ।
समर्प्यते वो हित चिन्तकेन, श्री कुंथुनाम्ना वरसूरिणेति युष्मत्

हे लक्ष्मणसिंह नरेश !

आपकी प्राणीमात्र पर क्षमा दया होने से आप क्षमा कृपा व शांति के समुद्र हैं सच्ची न्याय व नीति के द्वारा समस्त राज्य को भूषित करने से वास्तविक आप सत्य न्याय नीति से सुशोभित हैं ।

हे धर्मवीर ! अपनी सम्पूर्ण प्रजा को पुत्रवत् पालते हुए समस्त राज्य के सांसारिक कार्य को करते हुए भी दान, पूजन, सत्पुरुष सेवा तथा आत्म चिन्तवन परलोकवार्ता करते हुए जनक राजा के समान धन, धान्य, वैभव, माया, शरीर आदि सब आत्मा से भिन्न हैं इस प्रकार चिन्तवन करते हैं इसलिये आप विदेही हैं तथा—

ये सब राज्य लक्ष्मी, बन्धु आदि पूर्व पुण्य से प्राप्त होते हैं जबतक पुण्य है तबतक रहेंगे, और पुण्य क्षय के बाद इनका वियोग हो जायगा अतः स्वपर कल्याण करना हो



श्रीमन् सरकार राय रायां महिमहेन्द्र, महाराजाधिराज,
महारावल, धर्मपरायण, धर्मनिष्ठ, सद्गुरुनिष्ठ,
राजरत्न, विद्या-भूषण, दानवीर, धर्मदिवाकर,
धर्मवीर, न्यायनीति निपुण, प्रजावत्सल, अनेक
नरेशों में अनन्य गुरु भक्त, श्री सर लक्ष्मणसिंहजी
साहिब बहादुरजी दामइकबालहू
के. सी. एस. आई., डूँगरपुर-नरेश.

मनुष्य का जीवन है इत्यादि सत्कृत्य को चिन्तवन करने वाले होने से आप श्री वास्तविक कृतकृत्य हैं।

अतएव सुख और शांति को देने वाले आप श्री के करकमलों में आप श्री को मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये, आप श्री को व प्रजा को सुख शांति देने वाला यह ग्रंथ सम्पूर्ण प्रजा को बोध कराने के लिये केवल स्वसुख में आश्रित होने वाले तथा आपका हित चिन्तवन करने वाले परमहंस परमात्मा सद्गुरु परम पूज्य प्रातः स्मरणीय श्री कुंथुसागर जी महाराज ने समर्पण किया है। सो, हे राजन्! स्वीकार करिये।

नोट—

इस ग्रन्थ की भाषा में जो अशुद्धियां रही होंगी वे दूसरी आवृति में शुद्ध कर दी जावेंगी। पाठकवर्ग ध्यान से पढ़ें।

ग्रंथ कर्ता का संक्षिप्त परिचय

संसार में उसी मनुष्य का जन्म लेना सार्थक है जिसने इस अमूल्य नर रत्न को प्राप्त कर आत्म कल्याण के साथ साथ विश्व में दूसरे प्राणियों का हित करने में अपना जीवन व्यतीत किया हो।

वर्तमान में भारत के चारों तरफ विश्वव्यापी महायुद्ध बड़ी भयंकरता से व्याप्त होरहा है, करोड़ों मनुष्य इस भीषण प्रलयकारी संग्राम में मृत्यु को प्राप्त हुए और हो रहे हैं करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति क्षण मात्र में जलाशय में नष्ट हो रही है एक देश दूसरे देश को विध्वंस कर रहा है, चारों ओर हिंसा बड़ी तीव्रता से अपना ताण्डव नृत्य दिखा रही है। यह क्यों! वास्तव में विचार किया जाय तो उसका प्रधान कारण क्या मिलेगा! वही-" मानव कर्तव्य विमुखता "।

मनुष्य का कर्त्तव्य तो क्या है किन्तु वह अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये, व विश्व विजयी बनने की महत्वाकाङ्क्षा से अनेक मनुष्य, धन, देश, नगर आदि को समूल विध्वंस करने में रंच मात्र भी संकोच नहीं करता है। यही तो कर्त्तव्य-विमुखता है।

मनुष्य कृत्यों से विमुख होने से ही संसार में सर्वत्र हाहाकार व अशांति फैली हुई है। अतएव प्रत्येक मनुष्य

मात्र को अपने जीवन का सदुपयोग करने के लिये मानव कृत्यों से और अकृत्यों से जानकारी प्राप्त करना अत्यावश्यक है। इसी उद्देश से पूज्यपाद विद्वच्छिरोमणि विश्वोद्धारक आचार्य श्री १०८ श्री कुंथुसागर जी महाराज ने विश्व के सम्पूर्ण मानव मात्र के हितकी अभिलाषा से यह "मनुष्य कृत्य सार" नामक ग्रंथ की रचना की है उक्त आचार्य श्री के सम्बन्ध में विशेष परिचय कराना सूर्य को दीपक दिखाना है।

आप परम-पूज्य चारित्र चक्रवर्त्ती आचार्यवर्य श्री १०८ श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रधान शिष्य हैं। आपका जन्म बेलगांव जिले के ऐनापुर नामक ग्राम में हुआ है। आपके पिता का नाम श्री सातप्पा और माताका नाम श्री सरस्वती था। आपका जन्म का नाम श्री रामचन्द्र जी था। बाल्यावस्था में भी वैराग्य के अद्भुत रंग में रंगे हुए होने से आपके भाव सांसारिक भोगों से विरक्त होने के थे।

तथा विद्यालय में भी आप सम्पूर्ण विद्यार्थियों से अत्यन्त प्रेम-भाव रखते हुए विद्याभ्यास करते थे उस समय अन्य विद्यार्थीगण भी आपके प्रेम व वात्सल्य से स्वयं रामचन्द्र जी की तरफ आकर्षित होते थे। उस समय भी रामचन्द्र जी निरन्तर इस प्रकार चिन्तवन करते थे कि कब मैं इन सांसरिक बन्धनों से मुक्त होकर सर्व संग परित्यागी बनकर स्व पर कल्याण करूंगा। अर्थात् आपके विचार सांसारिक कार्यों से विरक्त थे और विवाहादि में फंसना भी नहीं चाहते थे। किन्तु अपने माता व पिता के अत्याग्रह से इच्छा नहीं होने पर भी मजबूर होकर ब्रह्मचर्याश्रम से गृहस्था

श्रम में प्रवेश किया अर्थात् प्रथम श्रेणी से द्वितीय श्रेणी में प्रवेश किया उस अवस्था में भी श्री रामचन्द्र जी हमेशाँ तत्व-चर्चा, परोपकार आदि सत्कार्य में सतत लीन रहते थे। और कोई दुर्व्यसन तो आप स्वप्न में भी नहीं करते थे एवं गृहस्था-श्रम में भी आप सबसे प्रेम व वात्सल्य रखते थे। इससे रामचन्द्रजी के ऊपर अन्य मनुष्यों का प्रेम सहज ही उत्पन्न होता था और होना ही चाहिये, क्योंकि निःस्वार्थ प्रेम से अन्य मनुष्य भी स्वयं आकर्षित होजाते हैं। उस समय आपके श्वसुरजी के कोई संतान नहीं होने से वे रामचन्द्र जी को ही उत्तराधिकारी बनाना चाहते थे। किन्तु आप (रामचन्द्रजी) स्वयं अपनी ही सम्पत्ति को छोड़ना चाहते थे फिर अन्य सम्पत्ति को कैसे स्वीकार कर सकते थे इसी प्रकार शनैः २ सांसारिक भोगों से विरक्त होते हुए आप गृहस्थावस्था छोड़ कर वानप्रस्थ बने। आपने वानप्रस्थावस्था में कई दिन रह करके स्वपर उन्नति की। तदनन्तर समस्त बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग कर आत्मोत्पन्न अविनाशी सुख को प्राप्त कराने वाली वीतराग दीक्षा ग्रहण की अर्थात् परम-हंस सन्यासी हुए तदनन्तर आपने स्वल्प समय में ही अपने चारित्र बल से व्याकरण, न्याय, साहित्य, आदि विषयों में पर्याप्त विद्वत्ता प्राप्त की। आपकी विश्व-कल्याणकारी विद्वत्ता-पूर्ण हृदयग्राही उपदेश को श्रवण कर बडे २ विद्वान भी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं। आचार्यश्री के उपदेश से जो संसार का कल्याण होरहा है वह वचनातीत है। (१) आपके ही प्रभाव से तारंगाजी एवं पावागढ में दिव्य मानस्तंभ का निर्माण होकर पंचकल्याणिक प्रतिष्ठाएं हुई हैं एवं गिरनारजी पर मानस्तंभ तैयार होरहा है।

आचार्य श्री कुंथुसागर जी महाराज ने चतुर्विध संघ सहित गुजरात, मालवा, दक्षिण. मेवाड़. आदि देशों में भ्रमण कर अपने दिव्य ज्ञानामृत का पान कराते हुए अनेक मानव समाज का उद्धार किया है।

सुदासना नरेश, टीम्बा नरेश, ईडर नरेश, विजय नगर, बड़ौदा आदि के नरेन्द्र उक्त आचार्य महाराज के परम भक्त हैं।

केवल डूँगरपुर में ही नहीं किंतु देश में प्राय: सर्वत्र आचार्यश्री के प्रभाव से धर्म, ज्ञान, एवं शिक्षा का अपूर्व प्रचार हुआ है।

तथा अनेक स्थानों पर आचार्य श्री के द्वारा वर्षों का आपसी वैमनस्य दूर होकर शांति स्थापित की गई है।

बड़े २ शहरों में पब्लिक भाषण आपके हुए जिसमें हिन्दू, मुस्लिम, जैन राज्य-कर्मचारी व पदाधिकारी सब आपके भाषणों से लाभ उठाते थे। आचार्यश्री के मधुर हृदयग्राही, सरस व्याख्यान से जनता पर आशातीत प्रभाव पड़ता है व धर्म की जागृति होरही है आपने अपनी माता सरस्वती का नाम सार्थक कर दिखाया है क्योंकि आप अपने नाम तथा कामसे सरस्वती पुत्र ही सिद्ध हुए है।

आपने "मनुष्य कृत्यसार" के समान चतुर्विंशति, जिनस्तुति, शांतिसागर चरित्र, बोधामृतसार, निजात्मशुद्धि-भावना, मोक्षमार्ग प्रदीप आदि अनेक नीतिपूर्ण, सत्यधर्मको

जगाने वाले ग्रंथों की रचना कर संसार का महत् उपकार किया है। आचार्य श्री की ग्रंथ निर्माण शैली अद्वितीय है। आगम के तत्वों को आधुनिक रीति से स्पष्टीकरण करने में आप सिद्धहस्त हैं। आपकी भाषण-प्रतिभा, शांत व गंभीर मुद्रा के सामने बडे २ राजाओं के मस्तक झुक जाते हैं।

आपके उपदेशों के प्रभावसे अबतक हजारों मनुष्य मांस, मदिरा आदि का त्याग कर नियमी हुए हैं।

इत्यादि आचार्य श्री के कार्य व आपके देखने से पूर्वाचार्य श्रीमत्पूज्यपाद कुंद कुंद स्वामी, समंतभद्र, अकलंक, आदि का स्मरण आता है। अर्थात् आचर्य श्री के समस्त कार्य पूर्वाचार्यों के समान हैं।

गुजरात प्रान्त में जो आपने धर्म की अपूर्व जागृति की है वह तो प्रशंसनीय है किन्तु और भी देशों में आपने अहिंसा का प्रचार किया है।

अनेक स्थानों में आचार्य श्री के जन्म के दिन धूमधाम से उत्सव मनाकर अहिंसादिन मनाने की राज्यद्वारा घोषणा होकर फर्मान निकाले हैं।

डूंगरपुर व वागड़ प्रान्त के निवासियों के प्रचुर पुण्योदय से व सौभाग्य से इस वर्ष पूज्यपाद आचार्यवर्य का चतुर्विध संघ सहित चातुर्मास हुआ है। यहां पर आचार्यश्री के चातुरमासिक वर्षा योग से धर्म की अपूर्व प्रभावना जागृति हुई है।

एवं आपके ही प्रसाद से यहां की जैन समाज ने आचार्य कुंथुसागर जैन छात्रावास व विद्यालय की स्थापना की है। इसकी यहां पर अत्यन्त आवश्यकता थ यह .आचार्य श्री के महत्वपूर्ण उपदेशों का ही प्रभाव है यहां की गुरु भक्त जैन व इतर समाज ने भी यथा शक्ति आचार्य संघ को भक्ति व सेवा की है सो प्रशंसनीय है। साथ में—

बागड़-प्रान्त-दीपक, क्षत्रिय-कुल-कमल--दिवाकर, प्रजावत्सल, महीमहेन्द्र, न्याय धर्मपरायण, श्रीमान् श्री लक्ष्मणसिंह जी बहादुर डूंगरपुर नरेश ने व आप श्री के धार्मिक परिवार ने जो इस समय गुरुभक्ति व सेवा प्रदर्शित की है वह सदा के लिये प्रशंसनीय व स्मरणीय रहेगी।

धर्मवीर प्रजापालक महारावल साहब ने भी आचार्य श्री की जन्म तिथि कार्तिक शुक्ला २ को सम्पूर्ण राज्य में अहिंसादिन मनाने को घोषणा कर अपूर्व गुरुभक्ति का परिचय दिया है।

यहां तक कि इस विश्वोपकारी "मनुष्य कृत्यसार" नामक ग्रंथ का प्रकाशन भी श्री० महारावल साहब ने अपने व्यय से ही करवाया है। यहां के समस्त राज्य परिवार में धार्मिक भाव कूट कूट कर भरे हुए हैं। ऐसे दया कृपा के सागर नरेश अपने परिवार सहित न्याय व नीति से प्रजा का पालन करते हुए चिरकाल तक इस भूमण्डल में जयवन्त रहें। तथा उक्त आचार्य श्री की प्रतिभा ज्ञान चरित्र आदि में वृद्धि होकर और भो देश व विदेश में उनके द्वारा धर्म का

प्रचार होता है यही हमारी त्रैलोक्य चिन्तामणि परमात्मा से प्रार्थना है ! ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

गुरुभक्त—

सकल समाज,
डूंगरपुर.

आचार्य चरणारविंद चञ्चरिक—
महेन्द्र कुमार 'महेश' व्या. सा. विशारद
प्रधानाध्यापकः—
श्री आ० कुंथुसागर जैन विद्यालय,
[डूंगरपुर स्टेट].



श्री परम पूज्य, पूज्यपाद, प्रातःस्मरणीय जगद्वन्द्य, जगदुद्धारक,
नरेन्द्रपूज्य, व्याख्यानवाचस्पति, कविवर्य, वादीभकेशरी,
विद्वच्चिंतामणि, आचार्यवर्य १०८ श्री कुंथुसागरजी महाराज

ॐ

मनुष्य कृत्य सार

मंगलाचरण

निरंजनं शिवं नत्वा, विष्णुं बुद्धं जिनं मुदा ।
तथा शान्ति सुधर्मौच, शिक्षा दिक्षा वर प्रदौ ॥ १ ॥

मनुष्यकृत्यसारोऽयं, ग्रन्थः सच्छान्तिदः सदा ।
लिख्यते स्वात्मनिष्ठेन, कुंथुसागरसूरिणा ॥ २ ॥

युग्मम्

व्याख्या-- निरंजनं, निष्कलंकं, अर्थतः वीतरागं, नामतस्तु एकोऽपि भवतु शिवः शंकरः विष्णुः विशति अनन्तज्ञानादि लक्ष्मीमिति विष्णुः, बुद्धः, सुगतः, जयति रागादीनिति जिनः इत्यादि सहस्रैरपि सबोधनैः प्रसिद्धं तं इष्टदेवं, मुदा,=हर्षेण नत्वा प्रणम्य, तथा एवं प्रकारेण, शान्तिश्च सुधर्मश्च, तौ, श्री शान्तिसागर सुधर्मसागरनामानौ शिक्षादीक्षावरप्रदौ, उभावपि गुरू प्रणम्य, सदा सततमेव, न तु यदाकदाचित्, समीचीनां शान्ति ददातित्येवं भूतः, अयंः प्रकृतः ग्रंथः, "मनुष्यकृत्यसार" इति सार्थकनामधेयः, स्वात्मन्येव निःशेषेणातिष्ठतीति तेन, श्री कुंथुसागराचार्येण लिख्यते, विरच्यते ।

भाषार्थ—निरंजन, निर्विकार देव को, चाहे उसे नाम से शिव शङ्कर, विष्णु, जिन कुछ भी कहो, उनको हर्षपूर्वक नमस्कार करके तथा, दीक्षा गुरू श्री शान्तिसागरजी, शिक्षा गुरू श्री सुधर्म सागरजी, को भी नमस्कार करके, मेरे आत्मा में ही जिसकी निष्ठा है, ऐसा मैं कुंथुसागराचार्य "मनुष्यकृत्यसार" नामक सार्थक सदा सच्ची शान्ति को देने वाले इस ग्रन्थ को रचता हूँ।

भावार्थ—आज समस्त मानव केवल नाम से लड़ मर रहे हैं, और धर्म के नाम पर अधर्म कर रहे हैं जोकि मनुष्योचित नहीं है। इसलिये आचार्य श्री ने प्राणीमात्र का जो धर्म है सो ही बतलाया कि नाम से कोई भी हो चाहे खुदा, पीर, विष्णु, ब्रह्मा कोई भी हो किन्तु निर्विकार, निरामय, वीतराग, चिदानन्द स्वरूप, परमात्मा परमानन्द सुख में निमग्न देव को ही आत्मा की शुद्धि के लिए प्रत्येक दिन प्राणियों को भजना चाहिये।

ग्रन्थकर्तु प्रतिज्ञा

सत्कृत्यानि मुदावक्ष्ये, प्राणिनां पुण्यहेतवे।
तानि कृत्वा शिवंयान्तु, भव्या भावोऽस्ति सद्गुरोः ॥ ३ ॥

संस्कृतार्थ—प्राणिनां, जीवानाम् पुण्य हेतवे, पुण्यं, सुकृद्वर्द्धन मेव हेतुःकारणं यस्मिन् तस्मै मुदा हर्षातिरेकेण, सत्कृत्यानि समीचीन कर्त्तव्यानि वक्ष्ये, प्रतिपादयिष्ये, तानि कृत्वा, विधाय

भव्याः, भवितुंयोग्या, भद्रपरणामिनो जीवाः शिवं यान्तु कल्याणं प्राप्नुवन्तु इति सद्गुरोः तरागस्य पक्षपात रहितस्य वा भावोऽस्ति अभिप्रायोऽस्ति, न तु लौकिक लाभादिप्राप्ति हेतोः ।

भावार्थ—सर्व प्राणियों को पुण्य की प्राप्ति हो, और उनको आचरण करके सरल परणामी सब जीव कल्याण को प्राप्त करें, इसलिये मैं उन पवित्र कर्तव्यों का विवेचन करूँगा, ऐसा श्री सद्गुरू का अभिप्राय है ।

प्रश्न—वद मे प्राणिमात्राणां, कति कृत्यानि सन्ति कौ ।
हे गुरूदेव ! मुझे बताओ प्राणिमात्र के कितने कर्तव्य हैं ?

उत्तर—सप्तैव प्राणिमात्राणां, कृत्यानि सुखदानि च ।

भावार्थ—प्राणिमात्र को सुख देने वाले सात ही कर्तव्य हैं ।

प्रश्न—कानि तत्सप्तकृत्यानि, चिन्हं नाम मुदा वद ।
तानि ज्ञात्वा यथाशक्ति, करोमि सिद्धये सदा ॥ १ ॥

संस्कृतार्थ—पुनरपि प्रार्थयति जिज्ञासुशिष्यः भो गुरो ! कानि तानि सप्त कर्तव्यानि, तेषां किं लक्षणं, कानि नामानि इति वद निरूपय यतोऽहं तानि विज्ञाय सिद्धये साध्य संपादनार्थं, तानि कर्तव्यानि, शक्त्यानुसार सदा समाचरामि ।

भावार्थ—जिज्ञासु शिष्य पुनः पूछता है कि हे गुरुदेव ! उन सातों कर्त्तव्यों का नाम और स्वरूप क्या है सो समझाइये ताकि उनको जानकर सिद्धि के लिये यथाशक्ति सदा आचरण करूँ।

भावार्थ—दुनिया में अनेक कार्य हैं किन्तु जिससे स्व-पर कल्याण होता हो उसीका नाम कर्त्तव्य है, और उन कर्तव्यों को पालने के लिये समस्त मानव जाति को सम्बोधन करके आचार्य श्री ने कहा है सो उचित ही है क्योंकि सत्पुरुष निष्प्रयोजन कार्य किसी को नहीं बताते।

तानि च सप्त कर्तव्यानि निरुपयन्ते

विद्याभ्यासश्च सत्सेवा, दानं नीत्याधनार्जनम्।
स्वविचारःप्रभोःस्तोत्रम्, सदुद्देशो समार्जितः ॥ ४ ॥
इति सप्त सत्कृत्यानि, प्रोक्तानि सुखदानि च।
सर्वेषां प्राणीमात्राणां, शाश्वतशांतिहेतवे शुभं ॥ ॥ ५ ॥

संस्कृतार्थ—पूर्वयानि कर्त्तव्यानि प्रोक्तानि तानि निम्नांकितानि विद्यन्ते। प्रथमं कर्त्तव्यं तु विद्याभ्यासः, व्याकरण, न्याय, ज्योतिषादि एवम् च हिन्दी आदि सद् विद्यानां पठनं।

द्वितियं तु सत्सेवा अर्थात् विद्याविशारद सद्गुरुणां तथा विश्वस्य प्राणीमात्राणां सेवा करणं। तृतीयं तु दानं सद्गुरुभ्यश्च दीन संकटापन्न वसुतुजीवेभ्यः भोजनं वस्त्राहारादि प्रदानं। चतुर्थं

कर्त्तव्यं नीत्या धनार्जनम् न्यायेन स्वकुटुम्बादिपोषणार्थं वाणिज्या-दिना धनोपार्जनम् कर्त्तव्यं ।

यतः धनेन विना धर्मादिकार्यं तथा दानादिमहत्कार्यं मानवाः नैव कर्तुमर्हन्ति । अतः स्वपर कल्याणार्थं न्यायेन धनोपार्जनमपि मानवानां प्रधानं कर्तव्यं वरीवर्ति ।

षष्ठमं कर्त्तव्यं तु स्वविचारः आत्मचिन्तवनम् । सप्तमं तु सर्वदेशे समामतिः सर्वस्मिन्देशे सर्वदेशे, समामतिः समानाबुद्धिः अर्थात् सम्पूर्णदेशस्य प्राणिमात्रेषु साम्यभावधारणंवति सप्तमं कर्त्तव्यं

इति एवं प्रकारेण सप्तसत्कृत्यानि सप्त समीचीन कार्याणि कृत्यानि तानि सुखदानि सुखं आनन्दं ददातीति सुखदं तानि सुखदानि सर्वेषां प्राणिमात्राणां निखिल मानवगणानां शाश्वतं निरंतरं शांति हेतवे अर्थात् शांति करणार्थं प्रोक्तानि प्रतिपादितानि

अत्र खलु ग्रन्थकर्तुरयमेवाभिप्रायो विद्यते, यत् अयं "मनुष्यकृत्यसाराख्यः" ग्रन्थः सम्पूर्ण मानवमात्राणां हितार्थमेव विलिख्यते । न किलकस्यचितजातिवर्णसमाज विशेषस्य हितार्थं विरच्यते अतः सम्पूर्ण मनुष्यवृन्दैः ग्रन्थेषु प्रतिपादित कर्त्तव्यानि सम्यग्प्रकारेणाधीत्यस्य ग्रन्थस्य सदुपयोगो कर्तव्यः ।

एतेषां सर्वेषां कर्तव्यानामग्रे पृथक पृथक् स्पष्टीकरण पूर्वकं वर्णनम् क्रियते ।

अर्थ—वे सात कर्तव्य निम्न प्रकार के हैं।

विद्याभ्यास, सेवा, दान, धनोपार्जन, आत्मविचार, ईश्वर स्तवन, सम्पूर्ण देश के प्राणियों में साम्य भाव। इस प्रकार सुख को देने वाले, सम्पूर्ण प्राणीमात्र के निरन्तर कल्याण के लिये ये कर्तव्य कहे गये हैं

इनका अलग अलग खुलासा आगे करते हैं।

सब से पहला कर्तव्य (विद्याभ्यास).

येन केनाप्युपायेन, विद्याभ्यासः सुखप्रदः।
प्राणिमात्रैः पुरा कार्यः सर्वशान्ति भवेद्यतः॥ ६॥
विद्याविना वृथारूपं, वेषभूषादि जीवनम्।
चन्द्रहीना वृथा रात्रि, निर्गन्ध कुसुमं भुवि॥ ७॥

संस्कृतार्थ—पुरा, सर्वप्रथमं तावत्, येन केनापि, उपायेन, प्राणिमात्रै अखिलैरपि जीवजातैः सुखं हितं प्रददातीत्येवं भूतः विद्यायाः अभ्यासः कार्यः कर्तव्य एव, यस्माद्धि, सर्वेषां स्वेषां परेषां च शान्तिरात्मलाभः भवेत्। विद्यां विना ज्ञानमन्तरेण रूपं सौन्दर्यं वृथैव, वेषः बहुमुल्य वस्त्रादिसज्जा, भूषाः अलङ्कारादिपरि परिधानं, आदि शब्दात् सुगन्धादिव लेपनं इत्यादिभि युक्तमपि जीवनम् निष्फलम्। यथा च चन्द्र हीना रात्रि न शोभते, भुवि

लोके निर्गन्धं गन्ध विहीनं कुसुमं पुष्पं न शोभते, तथैव विद्या-विहीनं जीवनं न विभाति ।

भावार्थ—प्राणिमात्र का सबसे पहला कर्तव्य है कि, जिस किसी उपाय से विद्या का अभ्यास करे, क्योंकि सुखदायक एवं, व्यक्ति तथा समाज, सर्वत्र शांति विधायक वस्तु विद्या ही है। जैसे चन्द्रमा बिना रात्रि की, तथा गन्ध हीन पुष्प की शोभा नहीं होती, उसी प्रकार वेष भूषण, अलङ्कार, आडम्बर आदि से जीवन सुन्दर नहीं हो सकता, विद्या बिना ये सभी वृथा हैं। विद्या सहित सब वेषादि सफल हैं।

विशेषार्थ—सुख और शांति, ये दो बातें सभी प्राणियों को इष्ट हैं, किन्तु मानव प्राणी के सिवा अन्य प्राणियों की योग्यता इन वस्तुओं के पाने की बहुत कम है, मनुष्य भी अपनी उस योग्यता का विकास, विद्या के बिना नहीं कर सकता। इस अन्धकारपूर्ण संसार में विद्या ही एक सच्चा दीपक है, जो मनुष्य को विनाश के पथ से बचा कर सच्चा मार्ग प्रदर्शित करता रहता है। इस लिये जैसे बने तैसे, विघ्न और बाधाओं को सहते हुवे भी विद्या का उपार्जन करना चाहिये, विद्या ही सच्चा और सबसे अच्छा धन है, जहां दुनिया की सब धन, दौलत, ताकत आदि सब वस्तुएँ बेकार साबित होती हैं, वहां पर ही विद्या ही अपना चमत्कार दिखाती है।

भावार्थ—इस विद्या की तरफ विशेष कर राजा महाराजा आदि बड़े पुरुषों को ध्यान रखना परम कर्तव्य है। देश में कोई भी मनुष्य विद्या से हीन न रहे जिससे समस्त मानव जाति सुखी रहे।

विश्वजननी संस्कृत भाषा तथा स्वानन्दसाम्राज्यसुख प्रदायिनी आध्यात्मिक विद्या तथा ज्योतिष, व्याकरण, वैद्य विद्या साहित्य, एवं सर्व ऋतुओं में फल फूल, व अनेक प्रकार की सुखदायी धान्योपार्जन करने वाली कृषी विद्या, तथा कृषी कार्य करने योग्य अनेक यन्त्र विद्या, ऐसे ही जैसी जैसी जिनकी बुद्धि हो उसके अनुसार प्राणियों को शिक्षा देना अत्यावश्यक है जिससे समस्त विश्व सुखी व स्वर्गीय जीव के समान आनन्द से रहे। पूर्वोक्त कर्तव्य समस्त मनुष्यमात्र को स्वयं करना व कराना चाहिये। यही 'मनुष्य कृत्य सार' है।

— —

द्वितीयः कर्तव्यः

सेवा.

सेवा देवगुरूणां स्यात्स्वर्गमोक्ष सुखदायिनी।
अतएव सदा कार्या, भक्त्या विघ्नविनाशिनी ॥ ८ ॥
मुदानाथादि जीवानां सेवा शक्ति प्रमाणतः।
कार्या वा स्वात्मबन्धूनां, मिथः प्रेम विधायिनी ॥ ९ ॥

संस्कृतार्थ--द्वितीय कर्तव्यतया सेवां निर्दिशन्नाचार्यः अस्याः महत्वं सूचयति, देवो वीतरागः, सर्व दूषणदूरः, गुरुर्विषयाशा-वशातीतः एवंभूतदेवगुरूणां सेवा परिचर्या, स्वर्मोक्ष सुखदायिनी, विघ्नविनाशिनी च स्याद्भवेदेव, अतएव सदा भक्त्या विनयेन कार्या विधातव्या। शक्तिर्बलं, बलानुसारेण, अनाथादि जीवानां न विद्यते नाथः स्वामी येषां आदि शब्दात् दीन दुर्बल विपन्न रोगादिग्रस्तानामपि सेवा मुदा, हर्षपूर्वकं कार्या अथवा स्वस्य, आत्मनः, बन्धूनां च, कुटुम्ब देशजातीयबन्धूनामपि सेवा मुदा कार्या, ऐषा हि मिथः परस्परं प्रेमविधायिनी भवति।

भावार्थ--वीतराग देव एवं गुरुओं की सेवा स्वर्ग और मोक्ष का सुख देने वाली एवं विघ्नों का विनाश करने वाली होती है इसलिये इनकी सेवा सदा भक्ति और विनय से करनी चाहिये, तथा अपनी शक्ति के अनुसार अनाथ, दीन, रोगी विपत्ति में फंसे जीवों की भी सेवा करनी चाहिये। कुटुम्बी तथा देश एवं

जाति के बन्धुओं की भी यथाशक्ति सेवा अवश्य करनी चाहिये क्योंकि इससे परस्पर में प्रेम रहता है।

विशेषार्थ—जो जैसी वस्तु की सेवा करता है वैसा ही उसको फल मिलता है इसलिये, जो, सब विघ्न बाधाओं को पार करके अपनी वीतरागता से परम उच्च पद में प्रतिष्ठित हो गये हैं, ऐसे, देव, गुरु, की सेवा करता है, उसे स्वर्गादि में पदवी मिलेगी ही, ऐसी समुज्ज्वल सेवा से कोई भी उच्च पदवी सहज प्राप्य हो सकती है। तथा जो अपनी शक्ति श्रद्धा के माफिक प्रसन्नता के साथ अपने कुटुम्बी, जाति बन्धु, देश बन्धु, तथा दीन, दुखी, अशक्त, रोगी तथा अन्य भी प्राणियों की निःस्वार्थ सेवा करता है, वह सबका प्यारा होता हैं, सर्व प्रिय होने के कारण उसके सब काम भली भांति हो जाते हैं, विघ्न बाधा नहीं आती, इसलिये ऐसा प्राणी बड़ा सुखी रहता है। इसलिये सेवा को अपना सर्वस्व समझना चाहिये तथा यह शरीर केवल हाड़ मांस का पिंजर है इससे लौकिक कल्याण करने वाली कोई भी चीज नहीं निकलेगी।

पशु यदि मर जाय तो उसके शरीर की हरएक वस्तु प्रायः दूसरों के कार्य में आती है। किन्तु मनुष्य के शरीर का कोई अंश दूसरों के काम में नहीं आता। चाहे कितने भी उत्तमोत्तम भोग सामग्री व स्वाद्य पदार्थ खिलाइये फिर भी यह एक दिन नष्ट हो जायगा और मिट्टी में मिल जायगा।

अतएव परमानन्द शुद्ध चिदानन्द मूर्ति, सर्वसंग परित्यागी सद्गुरुओं की सेवा करनी चाहिये। तथा माता पिता भाई व सम्पूर्ण प्राणियों की सेवा करनी चाहिये। चाहे वह किसी भी कौम व किसी भी देश का क्यों न हो, रोगग्रसित हो, दीन हो, दुखी हो, उसकी निःस्वार्थ भाव से अवश्य सेवा करनी चाहिये। हर तरह से उसको सुख व शांति पहुँचाना मानव जाति का कर्तव्य है। यह मनुष्य शरीर ही दूसरों की सेवा के लिये है न कि अच्छे अच्छे स्वादिष्ट भोजन कर इसको पुष्ट कर पशुवत् अन्याय कार्य करने के लिये।

प्रश्न—तृतीय कृत्यचिन्हं किं, विद्यते मे गुरो वद।

हे गुरुदेव! तीसरे कर्तव्य की पहचान क्या है सो बतावें

पितुरैः भक्षणं पापं, प्रोक्तं कौ केवलं ह्यतः।
सद्धनोपार्जनं कार्यं, नीति युक्ति प्रमाणतः ॥ १० ॥
यतः स्यात्सफल जन्म, धर्मवंशादि रक्षणम्।
जीवनं मृत्युतुल्यं स्या, त्तद्विनाभक्षणं, तमः ॥ ११ ॥

संस्कृतार्थ—पितुः जनकस्य रा धनं, तस्य भक्षणं, कौ लोके केवलं पाप कल्मषं प्रोक्तं, अस्मात् कारणात्, नीतियुक्तिप्रमाणतः सद् समीचीनं यथा स्यात्तथा धनोपार्जनं, कर्तव्यं यतः, जन्म जीवनं, फलेन, धर्मार्थकामरूपेण सहितं स्यात् धर्मस्य, वंशस्य, आदिपदेन, गोत्रादेः रक्षणं च भवेत्। स्वोपार्जित धनेन बिना

भक्षणां भोगस्तु तमः, अन्धकारएव जीवनमपि मृत्युसदृशं भवेत्।

भाषा—पूर्वजों के उपार्जित धन को ही केवल बैठे बैठे भक्षण करना लोक में पाप कहा गया है, इसलिये नीतियुक्ति प्रमाण से समीचीन धन का उपार्जन करना चाहिये जिससे कि यह मनुष्य जीवन धर्म, अर्थ; काम, रूप फल से सफल हो। धर्म कुल, जाति आदि की रक्षा हो। अपने उपार्जित धन के बिना यह जीना मरने के बराबर है, और उसके सामने केवल अन्धकार है।

विशेष—संचित धन को निरुद्यमी होकर भोगना, यह प्रमाद का लक्षण है और प्रमाद ही सब पापों की खान है। इसलिये अपने उद्यम से धन का उपार्जन करके धर्म, कर्म में सदुपयोग करना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है। वही पुत्र सुपुत्र है, जो अपने पैतृक धन, मान, मर्यादा की वृद्धि करता है तथा समस्त मानव जाति का जन्म इसीलिये है कि विश्व को स्वर्णमय बनादे और ऐसी ऐसी सम्पति इस विश्व के अंदर उपार्जन करना चाहिये कि कोई भी मनुष्य तो क्या पशु भी भूखा न मरे। इस भूमण्डल के अंदर इतना द्रव्य उपार्जन हो सकता है कि अनन्तानन्त काल तक अनन्तानन्त मनुष्य के खाते रहने पर भी उसकी कमी न होवे। इसलिये निश्चित है कि लोक में धन की कमी नहीं है। यदि कमी है तो मन की कमी है इसलिये ही सारा

देश उद्यम बिना दरिद्र व पीड़ित है। इसलिये मन को मिला करके सारे विश्व को हमेशा के लिये धन सम्पन्न व सुखी बना देना चाहिये।

सम्पूर्ण मनुष्यों के मन को मिलाना ही मानव कर्तव्य है इसके बिना सब पशुवत् हैं यह सामान्य से सम्पूर्ण विश्व का कर्तव्य कहा। तथा लोकातीत साधु सत्पुरुषों को ऐसा साधन कमाना चाहिये कि जो लोक से बहिर्भूत आत्मजन्य धन अर्थात निज धन को उपार्जन करना। चाहिये फिर दूसरे धन की कमी आवश्यकता न पड़े।

व्यवहारिक धन से तो केवल इन्द्रिय की व शरीर की तृप्ति होती है अतः इस ही तरफ साधु व सत्पुरुष को ध्यान नहीं देना चाहिये। निज धन है वह आत्मिक धन है और अतीन्द्रिय का सुख देने वाला है। वही साधुओं को कमाना चाहिये जिससे अनन्तानन्त काल तक आजाद रहे। यही साधु सत्पुरुषों का का महान कर्तव्य है।

प्रश्न—चतुर्थ कृत्य चिन्हं किं वर्तते मे गुरो वद।

हे गुरुदेव! चतुर्थ कर्तव्य का स्वरूप बताइये।

**श्रीदाय संघाय चतुर्विधाय त्वादन्न वस्त्रं च यथात्मशक्त्या ।
दीनादि जीवाय गृहादि वस्तु पश्चाद्धि कार्यं शुचि भोजनादि
दानं विना केवल भोजनार्थं धनार्जनं यश्च करोत्यभागी ।
ज्ञेय स कौ कीटक एव मूढोऽन्नार्थं गृहादौ भ्रमतीव वा श्वा ॥**

संस्कृतार्थ—श्री, लक्ष्मी, कल्याण रूपा तां ददातीत्येवं भूताय, चतुर्विधाय, मुनि आर्यिका, श्रावक, श्राविका अथवा ग्रहीवान-प्रस्थ चतुर्विधिरूपाय संघाय, निजशक्त्यनुसारं यथायोग्यं अन्न-वस्त्रादिकं दत्वा दीन दुर्बल रोगाद्या-भिभूत प्राणिभ्योऽपि, आवासादिकं उपयोगी वस्तु दत्वा पुनः शुचिः, द्रव्यः भावतश्च शुद्ध भोजनानादि ग्राह्यम् । यश्च अभागी अधमः दानविनैव केवलमुदरपूरणार्थं धनार्जनं करोति स मूढः कीटक एव कीटतुल्य एव, अथवा स्वोदर पूरणार्थं भ्रमता शुना सदृश एव स ।

अर्थ—सकल कल्याण के दाता चतुर्विध संघ, साधु साध्वी श्रावक श्राविका अथवा ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ सन्यासी, इनको जो यथाशक्ति अन्न वस्त्रादि देकर तथा दीन, दुर्बल, रोगी आदि को भी निर्भय निराकुल बनाने के लिये योग्य स्थान, वस्तु आदि देकर के पश्चात स्वयं शुद्ध भोजन पानादि ग्रहण करना यह मानुषं कर्त्तव्य है क्योंकि जो केवल अपना पेट भरने के लिए ही दानादिक बिना धन कमाने में फंसा रहता है, वह मूर्ख इस लोक में कीड़े के समान है । अथवा अन्न के लिए घर घर में भटकने वाले कुत्ते के समान उसका जीवन है ।

भावार्थ—विश्व में दो प्रकार के जीव हैं। एक तो मानव जाति दूसरी पशु जाति। पशु जाति में यह बुद्धि नहीं है कि वह विश्व का कल्याण करे व दान, पूजा, स्तुति, अतिथिसत्कार आदि को करे। ऐसा विचार भी नहीं कर सकते क्योंकि उनमें हेय और उपादेय की बुद्धि न होने से उक्त कार्य करने में असमर्थ हैं उनसे मानव जाति तो अवश्य लाभ ले सकती है। लेकिन विश्व कल्याण करने के पशुओं में भाव नहीं है इसलिये यह निश्चित ही है कि मानव जाति दूसरी है और पशु जाति कर्त्तव्य स्वभाव से दूसरी है।

अतएव समस्त मानव जाति को नीचे लिखे हुए कर्त्तव्यों को अवश्य करना चाहिये। समस्त विश्व को कल्याण—मार्ग में लगाने वाले परमहंस परमात्मा चिदानन्द मूर्ति सद्गुरुओं को अर्थात् आत्म कल्याण एवं विश्व कल्याण के सिवाय जिसे और कोई फिकर न हो ऐसे फकीरों (साधुओं) को त्रिकरण शुद्धि—पूर्वक आहार, औषध, वस्तिका आदि दान अवश्य देना चाहिये तभी मानव जाति का कल्याण होगा; परन्तु ऐसे सत्पुरुष बड़ी मुश्किल से कभी २ मिलते हैं, हर समय नहीं। अतः इनके अभाव में वानप्रस्थ को तथा समस्त गृहस्थी तथा विद्यार्थीगण जो विद्यालय में संस्कृतादि अध्ययन कर रहे हैं उनको तथा संस्कृत विद्या पठन पाठन में लगे हुए ब्राह्मणों को अवश्य दान देकर

अर्थात् भोजन करा कर स्वयं भोजन करना चाहिये। यह मानव मात्र का कर्तव्य है

यदि इनमें से भी कोई पात्र न मिले तो भोजन के समय दीन दुखी भूखा कोई भी मिल जाय उसे देकर भोजन करना चाहिए। यदि वह भी न मिले तो भोजन के समय एक दो रोटी व ग्रास दो ग्रास दुखी जीवों को देकर ही भोजन करना चाहिए। यह मानवमात्र का परम कर्तव्य है। इसके बिना जीवन केवल पशु के समान है।

पञ्चम कृत्यचिन्हं किं वर्तते मे गुरो वद।

गुरुदेव! पांचवे कर्तव्य का चिन्ह क्या है?

निरञ्जन प्रभोःस्तोत्रं श्रीदं कृत्वैव सद्गुरोः।
तद्गुणारोपणं स्वस्मिन् कुर्वन्युक्ति प्रमाणतः॥ १२॥
तत्समो भवितु शुद्धो यतते यो विचक्षणः।
निरञ्जन प्रभुः स स्यात सत्यार्थ स्तुति को भुवि॥ १३॥

संस्कृतार्थ— निरञ्जश्चासौ प्रभुः वीतरागादेवस्य, समीचीनश्चासौ गुरुर्ज्ञान ध्यानपरायणस्तस्य, श्रीदं 'श्रियं ददातित्येवभूत स्तोत्रम कृत्वा विधाय स्वस्मिन् स्वात्मनि, युक्ति प्रमाणेन तेषामिष्टदेव-गुरूणां, गुणान आरोपण सम्पादनं कुर्वेत य कश्चिद् शुद्धः

ि र्मळाचारसम्पन्नः विचक्षणः बुद्धिमान तत्समो आराध्य सदृशो भवितुयतते चेष्टते स ततुल्यं निरञ्जनः सर्वक्लेश कर्मविपाकाशयै दूरीभूतः देवः भवेत्। स एव भुव लोके सत्यरूपेण तथ्य रूपेण च स्तोता स्यान्नात्र संशयः।

भावार्थ — निर्विकार देव और ज्ञान ध्यान परायण सच्चे गुरु का कल्याणकारक स्तोत्र पाठ करता हुवा जो सदाचारी बुद्धिमान उस आराध्य इष्ट के सदृश बनने की चेष्टा करता है, वह वास्तव में निरञ्जन प्रभु हो सक्ता है, वही प्राणी सच्चा स्तुति करने वाला है। अर्थात इष्ट देवगुरु की स्तुति करके अपनी आत्मा वीतराग सद्गुण विभूषित करना मानव जीवन का परम कर्तव्य है।

भावार्थ—समस्त मानव जाति में यह प्रचलित रिवाज और अनुभव से विदित हैं कि जिस मनुष्य को जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ती है वह उसको प्राप्त करने में सदा तत्पर रहता हैं। जैसे रोगी वैद्यराज को और निरोगपने को प्राप्त करने का प्रयत्न करता हैं, ज्योतिषवाला ज्योतिष पंडित को, व्याकरण वाला वैयाकरण को, न्याय का इच्छुक नैयायिक को, स्वर्ण मोती इत्यादि चाहने वाला जौहरी को, वस्त्रार्थी कापड़िया को, प्राप्त करके अपना कार्य सिद्ध कर लेते हैं। इसी तरह से अपनी आत्मा को संसार समुद्र से पार करने के लिये परमानन्दमूर्ति सत्पुरुष साधुओं का व चिदानन्दमूर्ति निरञ्जन परमात्मा का

स्तुति, स्तोत्र, स्तवन मिनिट दो मिनिट जितना बन सके उतना अवश्य करना चाहिये और उन वीतराग परमात्मा देव तथा चिदानन्द मूर्ति गुरुओं के साथ चर्चा करके उनके समान अपना आत्मा को निर्मल पवित्र व कृत्यकृत्य बनाने का मानवमात्र का परम कर्तव्य है। और यह अपूर्व अवसर खोने पर अर्थात मानव पर्याय के पूर्ण होने पर चौरासी लाख योनियों में भटकना पड़ेगा। सो इस उत्तम नर पर्याय को व्यर्थ खोना मानव का कर्तव्य नहीं है।

प्रश्न—षष्टमं सुकृत्य चिन्हं किं विद्यते मे गुरो वद।

हे गुरुदेव! छठे सत्कर्तव्य का लक्षण क्या है?

कर्तव्यं प्राणिमात्रैः कौ प्राणिनां रक्षणं मुदा॥

संस्कृतार्थ—कौ भूलोकेऽत्र मुदा सहर्षं न तु विवशतया प्राणि मात्रैः सर्वैरपि, प्राणिनां षट्कायिक जीवानां रक्षणं कर्तव्यम्।

भावार्थ—इस पृथ्वी पर सब प्राणीमात्र का कर्तव्य है कि सब प्राणियों की रक्षा करे।

कुतागतोऽहं गमनीयमस्ति, कुत्र; सदा किं करणीयमेवं।
पृच्छन्त एवापि सुखादि दुःखं मिथोऽत्र वस्त्रादि गृहं इदानां।१४
कुर्वन्त एवं विनयादि सेवां मिथः सदा स्वात्म सुखादि चर्चाम्
सम्यक्प्रवृत्या गमयन्तु कालं यतो भवेद्वः सफलं नृ जन्म॥१५।

संस्कृतार्थ—अहं कस्याः गतेः समागतोऽस्मि, कस्याम् गतौवा

गन्तव्यमस्ति, मया किं करणीयम् एवं प्रकारेण स्वतः परतश्च सदा पृच्छन्तः, मिथः परस्परं सुख दुखादि संबंधिकुशलं विचारयन्तः, अन्नं, वस्त्रं, गृहादिकं च ददाना, मिथः, विनय सेवाशुश्रूषादिभिः सेवां कुर्वन्तः, सदा सततमेव स्वात्मनः सुखं हितं तदादर्यस्य तस्य चर्चाम् कुर्वन्तः समीचीनया प्रवृत्या आचरेण कालं समयं गमयन्तु अतिवाहयन्तु, यस्माद्भवः युष्माकं जन्म जीवनं सफलं भवेत् ।

अर्थ—मैं किस गति से आया हूँ और कहां जाना है तथा क्या करना चाहिये, तथा परस्पर में सुख दुखादि के पूछते हुए, यथायोग्य अन्न वस्त्रादि सामग्री देते हुए. विनय सेवा शुश्रुषा, आदि सद्व्यवहारों से सबको सन्तुष्ट करते हुए परस्पर में आत्म-हित की चर्चा, वार्ता करते हुए, भली प्रवृति सहित अपने समय का सदुपयोग करो, जिससे कि तुम्हारा यह मनुष्य जन्म सफल हो ।

भावार्थ—प्रत्येक मानव जाति को २४ घंटे में जितना अपना समय मिले इतने समय में अपनी आत्मा से एकान्त में पूछना चाहिये कि हे आत्मन् ! तू कहां से आया और अब यहां से तुझे कहां जाना होगा तुझे और इस नर पर्याय को प्राप्त कर क्या करना चाहिए । इस प्रकार अपनी आत्मा से आप ही पूछना चाहिए । फिर अपने आपही अपनी आत्मा को इस प्रकार

उत्तर देना कि तूने इस विषय कषाय के आधीन होने से व पञ्चेन्द्रिय सुख में मग्न होने से चौरासी लाख योनि में भटकता भटकता बड़े भाग्य से व कठिनता से इस अमूल्य नर पर्याय को प्राप्त किया है यदि फिर भी तू गफलत में पड़ कर हिंसादिक क्रूर कार्य करेगा तो हे आत्मन ! तुझे घोर नरक में जाना पड़ेगा व मायाचार छल कपट से व्यवहार करेगा तो तिर्यञ्च पशु–योनि में उत्पन्न होना पड़ेगा। एवं–दान धर्म एवं सांसारिक कार्यों को न्याय–पूर्वक करने से हे आत्मन ! तुझे मनुष्य पर्याय मिलेगा और २४ ही घण्टे धर्म, तप, दान, विश्व सेवा व सद्गुरु से तत्त्व चर्चा करेगा तो हे आत्मन्! तुझे स्वर्ग गति प्राप्त होगी तथा सर्व संग परित्यागी होकर हे आत्मन् ! चिदानन्द शुद्ध चिद्रूप परमात्मा के अंदर मग्न रहेगा, तथा स्वात्मिक रस पीवेगा व स्वात्मोत्पन्न रस एवं स्वात्मोत्पन्न शुद्ध भोजन करेगा तो मोक्ष को प्राप्त होगा। इस प्रकार अपनी आत्मा को उत्तर देना और पूछना प्रत्येक मानवमात्र का कर्तव्य है क्योंकि जो पैदा होता है वह अवश्य मरण को प्राप्त होता है अतः आगे जाने के लिए इस प्रकार पूर्वोक्त रीति से विचार करने की परम आवश्यकता है।

सप्तम कृत्य चिन्हं किं विद्यते मे गुरो वद।

अर्थ—गुरु देव ! सप्तम कर्तव्य का चिन्ह क्या है ?

देशे विदेशे रिपु बन्धु वर्गे, समानभावः सुखदो हि कार्यः।
सर्वत्र शान्तिर्ह्यचला यतस्यात्, प्रीति प्रमादोऽपि मिथ स्त्रिलोके १६

संस्कृतार्थ—देशे, स्वनिवासप्रदेशे, विदेशे, दूरवर्ति देशे च रिपूणां वर्गे, बन्धूनांच वर्गे, हि निश्चयेन, अवश्यमेवेत्यर्थः सुखं हितं ददातीति, एतादृशः समान भावः रागद्वेषादि पक्षपात रहितः, समता भावः कार्यः, विधातव्यः, यस्मात् सर्वस्मिन् देशे अचला, शाश्वती नतु क्षणस्थायिनी, शान्तिस्यात्, मिथः परस्परं त्रिलोके, धर्मार्थकामसम्बन्धेषु लोकेषु त्रिष्वपि प्रीतिराल्हादः प्रमोदः हर्षः स्यात्।

अर्थ—स्वदेश में और परदेश में, वैरीवर्ग में और बन्धुवर्ग में, सदा सुखदायी, समता भाव रखना चाहिये। जिससे कि सर्वत्र सच्ची और स्थायी शान्ति हो, तथा त्रिलोक में प्रीति और प्रमोद की वृद्धि हो।

भावार्थ—प्रत्येक मानव का यह परम कर्तव्य है कि देश विदेश का भेद न रक्खे। और मत धर्म, समाज आदि में भेदभाव न करे। क्योंकि भेदभाव करने से ही वर्तमान में चारों ओर सर्वत्र हाहाकार होरहा है, इसलिये यह हाहाकार व अशांति न हो व समस्त मानव जाति सुखी रहे इसके लिये जिस देश में जो २ आवश्यकता होगी उस आवश्यकता को पूर्ण करना प्रत्येक मानव मात्र का कर्तव्य है। इसीसे आचन्द्रदिवाकर पर्यन्त विश्व में शांति

रहेगी।

पूर्वोक्त कृत्यानि मुदेति कृत्वा, सर्वेऽपि जीवा सुखिनः सदास्युः
श्री कुंथुसिंधोः, सुखशान्तिमूर्तेः, भावोऽस्ति सूरेः, करुणाकरस्य ।७

संस्कृतार्थ—इत्येवंप्रकारेण, मुदा सहर्षं पूर्वोक्तानि, उपर्युल्लेखितानि सप्त कर्तव्यानि कृत्वा, सर्वेऽपि जीवाः सुखिनः निराकुलाः स्युः, करुणाकरस्य, सुखशान्तिमूर्तेः सूरेः श्री कुन्थुसागरस्य भावः, अभिप्रायोऽस्ति।

अर्थ—इसप्रकार उक्त सात कर्तव्यों का आचरण करके सर्व प्राणी सुखी हों, बस यही करुणा के समुद्र सुखशान्त मूर्ति श्री कुन्थुसागराचार्य का अभिप्राय है।

भावार्थ—पूर्वोक्त कर्त्तव्य वर्णन करने का सद्गुरु का यही अभिप्राय है कि आजतक जो अनाचार करते आये वे दुर्व्यवहार असद् आचार, आदि को छोड़ कर पूर्वोक्त बताये हुए कर्त्तव्यमें मनुष्यलीन होवें। यही इस ग्रंथ के बनाने का ग्रंथकार का आशय है।

प्रथमाध्यायः समाप्तः

अथ द्वितीयोऽध्यायः

मनुष्याणां मुख्यः राजा गणयते तस्मात्तत्कर्तव्यं विशेषतो निर्दिश्यते। मनुष्य वर्ग में राजा मुख्य गिना जाता है इसलिये राजा के विशेष कर्तव्य भी होते हैं जो संक्षेप से यहां बताये जाते हैं।

साधूनां धर्म निष्ठानां कार्यं राज्ञेति रक्षणम्॥
निग्रह करणं कार्यं दुष्टानां पक्षपातिनाम्॥१८॥

संस्कृतार्थ—संयुक्त जीवानुतमे सुखे धरति सधर्मः—, अथवा वस्तु स्वभावः धर्मः, तस्मिन निशेषेण तिष्ठन्ति, इति धर्मनिष्ठा स्तेषां, रक्षणं। दुष्टानां-उत्पातिनां, पक्षः रागद्वेश भाव तस्मिन्, पतितानां निग्रहकरणं- दण्डविधानं कार्यम्।

अर्थ—धर्मनिष्ठ संतजनों की रक्षा करना, और दुष्ट अर्थात् रागद्वेषी वेषियों का निग्रह करना राजाका कर्तव्य है।

भावार्थ—सद्गुरु व सज्जन धर्मात्माओं की हर तरह से रक्षा करना ही राजा का परम धर्म कर्त्तव्य है। क्योंकि धर्म तो सद्गुरु व सज्जन धर्मात्मा के रहने से ही रहता है। अतः सद्गुरु व सज्जन धर्मात्माओं की रक्षा करना ही धर्म की रक्षा करना है। एवं दुष्ट पुरुषों का निग्रह कर येन केन प्रकारेण उन्हें धर्म में लगाना ही राजाओं का प्रधान कर्तव्य है क्योंकि दुष्ट लोग बंदर के समान सदा धर्म कर्म से शून्य होते हैं। जैसे

बंदर उत्तम बगीचे में प्रवेश करके बगीचे को विध्वंस कर देते हैं। और स्वयं उन उत्तमोत्तम बगीचे के फलों को खानेसे वंचित रह जाते हैं। इसी प्रकार दुष्टलोग भी सद्गुरु व सत्पुरुष इत्यादि को दुःख दे करके उन्हें स्वर्मोक्षादि सुखदेने वाले धर्म से वंचित कराते है, और स्वयं भी धर्म से वंचित रहते हैं। इसलिये राजा महाराजाओं को दुष्टों का निग्रह करना महान् कर्त्तव्य माना गया है।

एतस्य किं फलं मित्या चष्टे—

साधूनां रक्षणात्पुण्यं, भवेत्स्येव शिवप्रदः।
दुष्टानां निग्रहाच्चापि, पुण्यं प्रोक्तं प्रमाणतः ॥ १५ ॥

संस्कृतार्थ—उक्त लक्षण लक्षितानां, साधूनां रक्षणात् शिव प्रदं पुण्यं यथा तथा दुष्टानां—दुर्जनानां, निग्रहणात् ताडनात् अपि प्रमाणतः युक्ततः पुण्य प्रोक्तं।

अर्थ—संत जनों का संरक्षण, और असज्जनों के निग्रह में अवश्य ही कल्याणप्रद पुण्य संचय होता है।

भावार्थ—सद्गुरु व सज्जन पुरुषों का रक्षण करना यह तो राजा का कर्तव्य है ही। किन्तु दुर्जनों का निग्रह करना भी महान् पुण्य हीं नही किन्तु मनुष्यत्व को व धर्मको कायम रखना है।

केन भावेन प्रजा पालनीया ?

भावस्तत्रेति राज्ञोऽस्ति, प्रजामे पुत्र पौत्रका ।
धार्मिकाः सज्जनाः स्वस्थाः भवन्तु शांतिदाः मिथः ।। २० ।।

—तत्र प्रजा पालनरूपे कर्त्तव्ये सदसतामनुग्रहनिग्रहे च राज्ञः पृथ्वीपालकस्ये,त्येवाभिप्रायोऽस्ति यत् प्रजाजनाः मे पुत्र पौत्रका एव अतस्तच्छ्रेयो वर्धनार्थं धार्मिकाः सज्जना मिथः परस्परं स त्र च शांतिं ददातीत्येवं भूताः स्वस्थाः सुखिनः स्वकर्तव्यनिष्ठा वा भवन्तु ।

अर्थ—सज्जनों पर अनुग्रह और दुर्जनों के निग्रहरूप कर्तव्य में राजा का यही अभिप्राय है कि सम्पूर्ण प्रजा मेरे पुत्र पौत्र समान है इसलिये इन सब के कल्याण हो । एवं धार्मिक सज्जन स्वस्थ व परस्पर शांति, सुख को देने वाले होवें ।

भावार्थ—सद्गुरु सज्जन व धर्मात्माओं की रक्षा करना तथा दुर्जनों का निग्रह करना यह आत्म अहंकार, ख्याति, पूजा वा विषयकषाय आदि को पुष्ट करने के लिये नहीं है किन्तु उसमें राजा का यह अभिप्राय रहता है कि मेरी सम्पूर्ण प्रजा व मेरे पुत्र पौत्रादिक सब धर्मात्मा बनें रहें । तथा परस्पर में एक दूसरे के साथ शांति पूर्वक चिरकालतक व्यवहार करते हुए रहें । व भविष्य में किसी भी प्रकार का कोई उपद्रव न करें । यही उद्देश

राजाओं का होता है। इसलिये "राजा परो देवता" माना गया है क्योंकि विश्व के कल्याण के लिये ही उनका जन्म है।

अतोऽपराधिनो दण्डो, दीयते तत्प्रशान्तये।
नख्यात्यर्थं न लाभार्थं, केवलं पक्षपाततः ॥ २१ ॥

संस्कृतार्थ—अपराधिनो दण्डः किमर्थं दीयते इतिचेत् केवलं तत्प्रशान्तये, तत्सुधारणार्थं, न च पक्षपाततः व नैव ख्यात्यर्थं तथा लाभार्थमिति।

अर्थ—अपराधी को दण्ड क्यों दिया जाता है? केवल उसके सुधार के लिये ही पक्षपातसे, एवं ख्याति व लाभ के लिये नहीं दिया जाता।

सद्विद्याऽध्ययनार्थं हि, यथा पुत्रोऽपि ताड्यते।
न किन्तु ताडकस्यास्ति, परबुद्धिर्भयप्रदा ॥ २२ ॥
तथा राज्ञो न दुर्भावो, दण्डदाने दयानिधेः।
वर्त्तते केवलं दृष्टिः सर्वेषां हितकारिणी ॥ २३ ॥

संस्कृतार्थ—यथा येन प्रकारेण सद्विद्याध्ययनार्थं हि खलु पुत्रोऽपि आत्मजोऽपि ताड्यते, किन्तु ताडकस्य भयप्रदा भीतिदायिनी, परबुद्धिः,- अयं परः इति मतिर्नास्ति, तेनैव प्रकारेण, दयायाः निधेः, सागरस्य राज्ञः नृपस्य, दण्डदाने दुष्टनिग्रहे दुर्भावो, कलुषित परिणामो नास्ति, किन्तु सर्वेषाम अखिल जीवानां हितकारिणी, सुखावहा दृष्ट वर्त्तते विद्यते।

भावार्थ—जिस प्रकार समीचीन विद्या पढ़ाने के लिये पुत्र को ताड़ना भी दी जाती है, किन्तु ताड़क को उसमें पर बुद्ध नहीं होते हैं जिससे कि पुत्र को भय या हानि की संभावना हो। उसी प्रकार दया के सागर राजा के भी दुष्टों के निग्रह करने में कोई दुर्भाव नहीं है। किन्तु सब जीवों का हित हो केवल यही दृष्टि रहती है।

जैसे पुत्र समीचीन विद्या पढ़ने के लिये नहीं जाता है तो पिता उसे हित-मित प्रिय भाषण बोल कर कुछ खाने की चीज देकर, स्कूल में भिजवाता है। यदि पुत्र इससे भी स्कूल में न जाय तो उसे बलात्कार से व ताड़नादि प्रयोग से स्कूल में पिता पुत्र को भिजवाता है। किन्तु उस पुत्र के ताड़न व बलात्कार करने में पुत्र उन्नति को प्राप्त हो, विश्व की शान्ति करने में समर्थ हो, विद्वान बने, आत्मोन्नति व लोकोन्नति करे, इस भावना से स्वकीय पुत्र मान कर पिता दण्ड देता है। उस पुत्र को ताड़न करने में पिता का ख्याति लाभ आदि दुष्ट भाव नहीं है। इसी तरह जगत्पता राजा प्रजा को दण्ड देता है, तो वह प्रजा की उन्नति व प्रजा की हित की दृष्टि से देता है। उसमें वह अपना कर्तव्य समझ कर देता है। क्योंकि राजा स्वयं यह समझता है कि 'तपोऽन्तेराज्यं' (मुझे पूर्व पुण्य से राज्य मिला) तथा अगर यहां पर पुण्य नहीं करूंगा तो 'राज्यान्ते नरकं' होगा। अतः प्रजा को पुत्रवत् पालन कर

उसे धर्म मार्ग में लगाना ही पुण्य है। यह कार्य मुझे अवश्य करना चाहिये। यदि न करूँ तो 'राज्यान्ते नरकं' अर्थात् नरक की प्राप्ति होवे, मुझे ही नहीं किन्तु साथ में मेरी प्रजा भी नरक में जावे क्योंकि "यथा राजा तथा प्रजा"। अपने प्राणों के समान सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों की रक्षा करता है ऐसा राजा राजा नहीं किन्तु देवता है। राजा व सद्गुरु का जन्म विश्व कल्याण के लिये ही है। अतः राजा व सद्गुरु जो २ आज्ञा करते हैं वह प्रजा को शिरोधार्य करना चाहिये। लोक में राज्य द्रोही व गुरु द्रोही नहीं बनना चाहिये। यही मानव मात्र का कर्तव्य है प्राण जाने पर भी मनुष्य को कर्तव्य पालन में दत्त चित्त रहना चाहिये।

जैसे बालक अच्छी तरह से खेलता हो तो माता अपने काम में लगी रहती है। जब बच्चे को भूख लगती है तब माता को बुलाने के उद्देश से रोना प्रारंभ कर देता है तो माता शिघ्र ही अपना कार्य को छोड़ करके बच्चे की इच्छा को पूर्ण कर देती है। इसी तरह से यदि प्रजा को कोई आवश्यकता पड़े और जगत्पिता राजा यदि और धर्म कार्य में लगा हुआ हो तो प्रजा का कर्तव्य है कि वह अपने दुःख को राजा के सन्मुख अर्ज करे यही नहीं किन्तु राजा के थाली में भोजन तक करने का भी प्रजा का (पुत्र का) अधिकार है। सो ठीक ही है पुत्र यदि पिता की थाल में भोजन न करे तो किसमें करे। तो

राजा (पिता) अवश्य प्रजा को सन्तुष्ट कर उसके दुःख दूर करेगा ही और दुःख दूर करना ही राजा का प्रधान कर्तव्य है।

मेरु यदि कम्पित हो जाय फिर भी राजा अपने कर्तव्य से चलायमान नहीं होगा।

पूर्व में जैसे राजा जनक, दशरथ, रामचन्द्र, युधिष्ठिर, भरत चक्रवर्ती श्रेयांस कुरु आदि अनेक राजाओं ने न्याय व धर्म से प्रजा का पालन कर अपनी कीर्ति को अजर अमर कर विदेही (मुक्त) बन गये। इसी प्रकार वर्तमान में भी सम्पूर्ण राजावर्ग उनका अनुकरण कर विदेही (जीवनमुक्त) बनें। यही ग्रंथ कर्ता सद्गुरु का आशिर्वाद है।

अतएव—

निग्रह करणात्पुण्यं दुष्टानामपि तत्वतः॥
सतेति शांतये प्रोक्तं, कुंथुसागर सूरिणा॥ २४॥

संस्कृतार्थ—दुष्टानां, दूषितजनानां निग्रह करणात् दण्ड विधानात् तत्वतः वास्तव रूपेण पुण्यमेव भवतीति सता श्री कुंथुसागराचार्येण शान्तये लोके शांतिस्थापनार्थं प्रोक्तं नैव स्वार्थतः।

अर्थ—वास्तवमें दुष्टपुरुषों का निग्रह करने से पुण्य बन्ध होता है इस प्रकार सज्जन सत्पुरुष विश्वोद्धारक आचार्य श्री कुंथुसागर जी महाराज ने कहा है।

भावार्थ—योंतो राजाओं को देवता के समान माना है सो ठीक ही है क्योंकि देवता और राजा दोनों का प्रधान कर्तव्य विश्व के प्राणियों की रक्षा करना व उन्हें सुखी बनाना है। परन्तु राजा को स्वयं यह समझना चाहिये कि हम विश्व के सेवक हैं क्योंकि सद्गुरु व विश्व के प्राणियों की सेवा करना बड़े ही भाग्य से मिलता है। अतः राजा वर्ग को अवश्य ही यह कार्य कर दिखाना चाहिये। क्योंकि प्रजा राजा का ही अनुकरण करती है राजा धर्मात्मा हो तो प्रजा भी धर्मात्मा जैसे नीतिकारों का वचन है:

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः, पापा पापे समे समाः।
राजानमनु वर्तंते, यथा राजा तथा प्रजा॥

इति द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः

अथ तृतीयाऽध्यायः

मानव जाति के सात कृत्य तथा राजाओं के लिए कुछ विशेष कर्तव्य तो बनाये फिर आत्म सिद्धि के लिए और विश्व शांति के लिए कुछ और भी बताया जाता है सो भाईयों इसको ध्यान से मनन करके नर-जन्म को सफल बनाओ।

यहां पर पुनरुक्त दोष नहीं है क्योंकि मानव जाति में सब एक श्रेणी के नहीं होते हैं। कोई एक बार कहने से, कोई दो बार कोई दस बार कहने से आत्म कल्याण करता है इसलिये सम्पूर्ण श्रेणी के जीवों का हित हो इस उद्देश्य से यह ग्रन्थ बनाया है। अब और भी आवश्यक कर्तव्य बताते हैं।

तोषकरं सदा यत्र प्रेम नस्याच्छुभं मिथः।
तद्बन्धुनियमच्छ्रीदो वा न तत्र वसेज्जनः॥ २५॥
प्रेमनियम हीनाः को बुधाः अपि पशोः समाः।
प्रेम नियम युक्ताःस्यु ज्ञात्वेति ज्ञानिनो जनाः॥ २६॥

संस्कृतार्थ—यत्र यस्मिन जनपदे जनेवा सदा निरन्तरं शुभं पवित्रं निस्वार्थमिति वा मिथः परस्परं तोषकरं तुष्टिजनकं प्रेम स्नेहं न स्यात् तथा तस्य प्रेम्णः बन्धुर्नियमः की दृशः, श्रीदः श्रियं ददातीत्येवं भूतः प्रेम सहितो नियमः नास्ति तत्र तस्मिन् जनपदे जनेवा न वसेत् निवासो न कार्यः।

यस्माद्धिप्रेम्णा नियमेन च हीनाः रहिताः नराः बुधाः ज्ञानीनोऽपि पशोःसमाः पशुभिःसमाः एव भवन्ति। इति ज्ञात्वा ज्ञानिनो विवेकिनो जना मानवाः प्रेम्णा नियमेन च युक्ताः समन्विताः स्युः भवेयुः।

अर्थ—जिस देश में अथवा व्यक्ति में पवित्र और परस्पर सन्तोषजनक प्रेमभाव नहीं है वहां मनुष्य को नहीं रहना चाहिए। क्योंकि प्रेम और नियम से हीन मनुष्य चाहे वह कितना ही पढ़ा लिखा क्यों न हो वह पशु–तुल्य है। ऐसा जानकर विवेकियों को प्रेम और नियम से अपने को विभूषित करना चाहिये।

—प्रेम बहुत उत्तम वस्तु है किन्तु संयम, नियम मर्यादा अवश्य होना चाहिये। विचारहीन, मर्यादाहीन प्रेम तो हानि–कारक है। किसी वस्तु मान, सुन्दर स्त्री, धन आदि किसी भी स्वार्थ से प्रेरित प्रेम तो अधम और नाशक है। निःस्वार्थ और कृपालु अन्तःकरण से पैदा हुआ प्रेम ही सच्चा प्रेम है॥ वह जिस व्यक्ति या समाज में होता है उसीका कल्याण होगा॥ एवं सम्पूर्ण विश्व के प्राणियों को अपनी आत्मा के समान समझना प्रेम है अपनी विवाहित स्त्री को छोड़ कर दुनिया भर में जितनी स्त्रियाँ हैं उनको माँ बहिन व बेटी के समान समझना चाहिए। और इसीके अनुसार तमाखू, बीड़ी, जुआ इत्यादि

दुर्व्यसनों का तथा व्यर्थ बकवाद करने का त्याग करना चाहिये। इसीका नाम नियम है।

उपर्युक्त बात का पालन करने से ही प्रत्येक मनुष्य का मनुष्यत्व कायम रहेगा। और इस भव में तथा परभव में मानव जाति मात्र को सुख व शांति की प्राप्ति होगी।

अथोक्त सत्कृत्यानां महत्व स्पष्टीकरणार्थम् सद्गुरुणा विशेष तयोल्लेखः क्रियते ॥

सर्व जीवैः समं मैत्री न कृता यदि कारिता।
शोभा आत्मन्! किं कृतं तर्हि महत्कार्यम् त्वयाभुवि ॥ २७॥

संस्कृतार्थ—हे आत्मन्! त्वया यदि सर्व जीवैः समं मित्रता न कृता नाऽपि कारिता, या हि इति निश्चयेन लोके सर्वतो भावेन शोभा अस्ति तर्हि त्वया लोके किमन्यत् महत्कार्यम् कृतं?

भाषार्थ—हे आत्मन्! यदि तूने इस दुनिया में सब जीवों से न तो मित्रता की और न कराई जिससे कि मनुष्य शोभा सपन्न होता है तो बतलाओ तूने और किया ही क्या है? सब जीवों से मैत्री भाव रखना, वह महत्कार्य है।

भावार्थ—हे आत्मन्! तू अनादि काल से लड़ता झगड़ता ही आया है, और इस उत्तम नर पर्याय को प्राप्त कर फिर लड़ता

झगड़ता रहेगा तो तेरी मूर्खता का कहीं ठिकाना भी है खैर, अब तो अत्यन्त हो चुका इसलिये विश्व के सम्पूर्ण मानवों से तू मैत्री कर। यही मानव जाति का तेरा महान् कर्तव्य है। इसके बिना तेरा जीवन पशु-तुल्य है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य को अपनी अपनी आत्मा को समझाना चाहिये। समझना ही नहीं किन्तु उसे कार्य रूप परिणत करना चाहिये तभी तेरा कल्याण होगा।

दुश्चिन्ता स्वात्मनो यत्नाद्यदि दूरे कृता न चेत।
किं कृतं वदात्मन हि महत्कार्यम् सुखप्रदम् ॥ २८॥

—हे आत्मन प्रयत्नात् सावधानतया चेद्यदि दुश्चिन्ता-स्वात्मनोऽति दूरी न कृता तर्हि सुखप्रदं महत्कार्यम् किं कृतं इति मे वद।

—हे आत्मन! यदि तूने दुश्चिन्ता खोटी चिन्ता को दूर नहीं किया तो सुख सम्पादक बड़ा कार्य और किया ही क्या है। यह मुझे बता अर्थात् दुश्चिन्ता को छोड़ने से और कोई बड़ा सुखदायक कार्य नही है।

—हे आत्मन्! अनादि काल से इतनी मूर्खता का कार्य करता आया जिसका कहीं ठिकाना नहीं है। अब होश में आ। दुनिया में जितने भी प्राणी हैं वे सब अपने बन्धु

आई हैं । इसलिए उन्हें मारने का प्रयत्न नहीं करना चाहियें । अगर तू उन्हें मारने का प्रयत्न करेगा तो यह समझना चाहिए कि खुद अपने को तू मार रहा है इसलिए यदि तुझे मारना ही चाहिए तो अनेकों प्रकार की दुश्चिन्ताओं को करने वाले इस चञ्चल मन को ही तू मार दे । और अनर्थों का खजाना ऐसी इन पञ्चेन्द्रियों को ऐसा मार दे कि वे फिर न उठें । तभी तेरी दुनिया में बहादुरी एवं शूरवीरता है न कि उन कायर व निरअपराधी प्राणियों को मारने से तेरी शूरवीरता हैं । इसलिए मन और इन्द्रियों को तू अवश्य ही मार दे ॥ तभी तेरा कल्याण होगा ।

इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य को अपनी आत्मा को समझाना चाहिए । तभी मनुष्य कतव्य का पूर्ण रीति से पालन होगा ।

संसार भ्रमणादीनां निरोधो न कृतो यदि ।
भद्र चतुरतायाः किं स्यादात्मँस्ते प्रयोजनम् ॥ २९ ॥

संस्कृतार्थ—चतुर्गतिरूप संसार परिभ्रमणस्य आदिशब्दात् दुर्व्यसनादेः यदि निरोधोनकृतः तर्हि ते चतुरतायाः कुशलतायाः किं प्रयोजनम् निष्फलं जातं इति मे वद ।

अर्थ—चतुगति रूप संसार भ्रमण और दुर्व्यसन आदि का निरोध यदि हे आत्मन् ! तूने नहीं किया तो बता कि तेरी

कुशलता का फल ही क्या रहा ?

भावार्थ—हे आत्मन् अनादि काल से तू नरक तिर्यञ्च मनुष्य और देव गति के अन्दर अनन्त बार जन्मा और अनन्त बार मरा। और चारों गतियों में इतना अपार दुःख भोगा कि जिसकी मन से कल्पना भी नहीं हो सकती फिर क्यातू उन दुःखों को भूल गया। इसलिए हर तरह से प्रयत्न करके अपनी आत्मा को संसार चक्र से बचाना चाहिये तभी तेरा मनुष्य कर्तव्य पूरा होगा। और तेरा कल्याण होगा। और कार्य तो तेने अनन्त किये किन्तु उससे कुछ सार नहीं निकला और यदि यह काय तेने नहीं किया तो फिर व्यर्थ की चतुराई से तेरा क्या लाभ !

> **प्रचारो न कृतोभक्त्याऽहिंसा धर्मस्य शांतिदः।**
> **अन्य सहस्र कार्याणां करणात्किं प्रयोजनम् ॥ ३० ॥**

संस्कृतार्थ—यदि अहिंसाधर्मस्य शांतिदः प्रचारः भक्त्या श्रद्धया विनयेन च न कृतः तदाऽन्य सहस्र कार्याणां करणादपि किं प्रयोजनम् स्यात् ॥

अर्थ—यदि अहिंसा धर्म का शांतिप्रद प्रचार भक्ति श्रद्धा पूर्वक नहीं किया तो अन्य हजारों कार्यों के भी करने से क्या प्रयोजन !

भावार्थ—हे आत्मन् जो काम करने का था सो तो तूने नहीं

किया और व्यर्थ ही दुनिया के आडम्बरों में समय लगा दिया। इससे तेरी मूर्खता प्रगट होती है इसलिए अब तुझे विश्व भर में जो अनेक संस्कृति, मत मतान्तर हैं, और जिनसे सारा संसार थक चुका है, उन सब संस्कृति अर्थात् मत मतान्तर के जाल को छोड़ देना चाहिए और एक अहिंसा संस्कृत अर्थात् अहिंसा धर्म का ही सर्वत्र प्रचार करना चाहिए इससे अवश्य विश्व-कल्याण होगा अतः हे आत्मन ! तू इन हजारों कार्यों को छोड कर इस अहिंसा संस्कृति का ही सर्वत्र प्रचार करने का घोर प्रयत्न कर। इसके बिना सब कार्य निरर्थक हैं। जैसे एक के बिना केवल बिन्दियों का कोई प्रयोजन नहीं निकलता उसी प्रकार अहिंसा धर्म के प्रचार बिना और धर्मों का प्रचार करना स्वयं अपने आपका अपने हाथ से ही गला काटने के समान है, इसलिये यह निश्चित है कि अहिंसा धर्म का प्रचार ही तेरे लिए अत्यन्त आवश्यक है अहिंसा धर्म का लक्षण भी संक्षेप में समझ ले। मन से दूसरे प्राणियों का अहित व उनका नाश या दुख देने का चिन्तन करना मानसिक हिंसा है। और दूसरे प्राणियों का दुष्ट, कठोर क्रूर बचनों द्वारा किसी भी प्रकार से तिरस्कार व अपमान करना वाचनिक हिंसा है। और काय से निरपराधि और निर्बल प्राणियों के अङ्ग नाक कान काटना अथवा प्राणों का घात करना और सदा के लिये उनको दुनिया से हटा देना कायिक हिंसा है। इसीसे आत्मा का अहित होता

है इसलिये प्रत्येक मनुष्य को ऐसी तीनों प्रकार की हिंसा करके अपनी आत्मा को दुर्गति में नहीं पहूँचाना चाहिये और मन से समस्त मानव जाति का हित चिन्तवन करना मानसिक अहिंसा है हित प्रिय भाषण से समस्त मानव जाति का क्लेश दूर करना उनकी आत्मा को शांति पहूँचाना और परस्पर एक दूसरे में मैत्री व प्रेम उत्पन्न करना वाचनिक अहिंसा है निरपराधी निर्बल प्राणियों की काय से सेवा आदि द्वारा रक्षा करना ही कायिक अहिंसा है यही मानव जाति का महान् धर्म है अथवा आत्मा में रागद्वेषोत्पत्ति होना ही हिंसा है और नहीं होना अहिंसा है। इसके सिवाय जितने कार्य व क्रियाएँ हैं वे सब व्यर्थ आडम्बर हैं और मानव जाति कापतन कराने वाले हैं।

हे आत्मन्! तू और भी अहिंसा धर्म का खुलासा सुन जिससे तुझे पालने में सहूलियत रहे।

हिंसा चार प्रकार की हैः—

१. उद्योगी २. आरंभी

३. विरोधी ४. संकल्पी

इन चारों में सम्पूर्ण समावेश हो जाता है।

१. उद्योगी हिंसा असि, मसि, कृषि, वाणिज्य आदि उद्योग करने में जो प्राणियों का वध होता है सो उद्योगी हिंसा है,

२. आरम्भी हिंसा रसोई बनाना, चक्की चलाना, चूला आदि गृहारम्भ करने में तथा स्नान, गमन मोटर आदि के चलाने में जो प्राणियो का वध होता है वह आरम्भी हिंसा है।

३. विरोधी हिंसा दुष्टों को अर्थात् कारण बिना मनुष्यों को पीड़ा करने वाले प्राणियों को रोकने में विश्व को सताने व नाश करने वाले मनुष्यों को रोकने में अथवा चोर सिंह आदि कारण बिना लोगों को दुःख देने वालों को रोकने में तथा पुत्र स्कूल में नहीं जाते हैं तो उनको भेजने में जो कुछ भी उसके लिये पिता द्वारा पीड़ा हो वह सब विरोधी हिंसा है।

इस प्रकार यह तीनों प्रकार की हिंसा गृहस्थी (संसारी मनुष्य) त्याग नहीं कर सकता है परन्तु यह भी अहिंसा के समान ही है। क्योंकि उक्त तीनों कार्य करने में विश्व कल्याण व आत्म कल्याण की ही भावना रहती है इसलिये यह तीनों हिंसा होने पर भी अहिंसा ही हैं। क्योंकि उद्योग धन उत्पन्न करने के लिये ही किया जाता है और धन से विश्व का कल्याण होता है।

तथा आरंभ रसोई पकाना, व्यायाम करना, परोपकार के लिये गमन करना इत्यादि जो कुछ भी आरंभ है वह भी विश्व कल्याण व आत्म कल्याण के लिये है।

इसी प्रकार विरोधी हिंसा भी विश्वकल्याण के लिये ही की जाती है जैसे चोरों को पकड़ना, दुष्टों को रोकना, अहंकारियों का मान मर्दन करना, दुनिया को पीड़ा पहुंचाने वाले व्याघ्र, सिंह आदि को रोकना यह सिर्फ विश्वकल्याण के लिये ही किया जाता है। इसलिये यह भी अहिंसा है। इसी प्रकार उक्त तीनों प्रकार की हिंसा होने पर भी अहिंसा है।

चौथी संकल्पी हिंसा है।

अपराध बिना प्राणियों को मारना, तथा धर्म के नाम से दुनिया में कलह, लड़ाई, झगड़ा, मचाना मंदिर, धर्मशाला आदि का द्रव्य वा जायदाद हड़प करना, तथा देवताओं के नाम से बकरा बकरी, भैंसा मुर्गा, इत्यादि जीवों का बलिदान देना; तथा अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये धर्मात्माओं पर व राज्य पर हमला कर लाखों जीवों को मार डालना, तथा शिकार आदि खेल कर निरपराधी प्राणियों को मारकर भक्षण करना यह सब संकल्पी हिंसा है; इससे महान् पाप का बंध होता है। और इससे आत्मा को नरकादि दुर्गति में जाना पड़ता है। और वहां जाकर अनन्तानन्त कालतक अनन्त दुःख भोगना पड़ता है। इसलिये किसी भी प्राणीमात्र की संकल्पी हिंसा नहीं करनी चाहिये। यदि कदाचित् धर्म के नाम पर हिंसा करने की रूढ़ी चली आई है तो धीरे २ ऐसी रूढ़ी को बंद करने का प्रयत्न

करना चाहिये यह संकल्पी हिंसा इसलिये पापबंध का कारण है कि इसमें धर्म का तिल मात्र भी अंश नहीं है।

उद्योगी व आरंभी तथा विरोधी हिंसा में जो कुछ प्रमाद जन्य पाप हुआ है। उसे दिनमें आध घंटा एक घंटा अवश्य ही किये हुए पाप का प्रायश्चित करना, क्षमायाचना करना, आत्म निन्दा करना, परस्पर एक दूसरे से क्षमा मांगना, एवं इस प्रकार चिन्तवन करना चाहिये कि क्याकरुं ऐसे संसारिक कार्य मुझे करने ही पड़ते हैं। तथा—

वर्षमें मासमें एक दिन समस्त सांसारिक कार्यों को सर्वथा छोड़ कर कचहरी, व्यापार, दुकान आदि को बंद कर योग्य स्थान में बैठ कर दिनभर धर्मध्यान, गुरुभक्ति इत्यादिसे समय व्यतीत करना चाहिये जिससे कि आरंभी, उद्योगी, व विरोधी हिंसा में जो पाप लगेगा उसका निराकरण होजायगा। और वर्ष भर में एक दिन विश्व प्राणियों को शांति के लिये अहिंसादिन मनाना चाहिये।

दिवाली, दशहरा, आदि त्योहार केवल इसी तरह से धर्म साधन के लिये ही हैं। अतः ऐसे पर्वों में केवल धर्म ही का साधन करना चाहिये। इसके विरुद्ध त्योहारों में धर्म के विरुद्ध हिंसा करना, मांस, मदिरा, आदिका भक्षण करना या अनेक प्रकार के

जीवों का वध करना, यह तो अपनी आत्मा को स्वयं अधोगतिमें पहुँचाना है। जैसे कोयले से बिगड़े हुए हाथ को कोयले से ही धोना और मलमुत्र के हाथ को मलमुत्र से साफ करनाचाहे तो केवल अनुचित व अज्ञानता है, उसी प्रकार हिंसासे तो पाप लगता ही है फिर उस हिंसा को धोने के लिए हिंसा करना कहां तक ठीक है ?

गृहस्थियों को यदि वे आरंभी, उद्योगी, व विरोधी हिंसा को नहीं छोड़ सकें तो संकल्पी हिंसा को तो अवश्य ही छोड़ कर उन्हें मानव जातिका परिचय कराना चाहिये। इसीसे आत्मा कल्याण होगा। तथा संकल्पी हिंसा का जहां कहीं भी रिवाज हो उसे धीरे २ बंद कराना चाहिये जिससे अनर्थ प्रवृत्ति रुक जाय।

साधु सत्पुरुष, चिदानन्द मूर्ति सद्गुरु हैं, वेतो चारों प्रकार की हिंसा को सर्वथा परित्याग कर शुद्ध चिदानन्द में लीन हो जाते हैं। और आत्मोत्पन्न रस का आस्वाद करते रहते हैं, ऐसे सत्पुरुष लोक में विरले ही हैं सब नहीं। धन्यहै ऐसे ऋषि-राजों को ऐसे ही ऋषि संसार में अपने अपने मनुष्य कर्तव्य को सार्थक करते हैं।

इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को अपनी २ आत्मा को प्रति दिन समझाना चाहिये।

न कृता विश्व शांति र्बोधामृत प्रपानतः ।
निःसारोपदेशस्य, करणात्किं प्रयोजनम् ॥ ३१ ॥

संस्कृतार्थ—बोधः सम्यग्ज्ञानं तदेवामृतं तस्य प्रकर्षेण पानतः विश्व शांतिः न कृताश्चेत् निःसारोपदेशस्य निष्फलवचन व्यायामस्य करणात्किं प्रयोजनम् ?

अर्थ— ज्ञानरूपी अमृत के पान से यदि विश्वशांति न की तो हे आत्मन् ! तुझे निःसार उपदेश से भी क्या प्रयोजन ?

भावार्थ—मिष्ट प्रिय हितमित व सत्य भाषण से सारे विश्व में तेनें शांति नहीं फैलाई तो व्यर्थ ही बकवाद करना केवल लज्जा की बात है । बुद्धिमान् वही मनुष्य है जो व्यर्थ, कारण बिना बकवाद नहीं करे। क्योंकि हे आत्मन् ! तू यदि शांति और सुख चाहता है तो पहले समस्त विश्व को शांति और सुखमय बनादे, तो तुझे सुख और शांति स्वयमेव मिलजायगी । जैसे कि, यदि पड़ोसी के मकान में आग लग गई हो तो उस घर को बुझाना ही अपनी व अपने घर की रक्षा करना है । अगर तु यह बिचार करे कि मेरा क्या नुकसान होता है उसका जलता है तो जलने दो, क्योंकि वह पराया घर है, आज उसका मकान जलेगा तो कल तेरा भी अवश्य जलेगा क्योंकि वह भी तेरे ही पास है ईसी प्रकार ऐसेही तु समस्त विश्व को अशान्तमय बनाए

गा तो तुझे कहां से शांति मिलेगी ? इसलिये हे आत्मन् ! तू समस्त विश्व को शांतिमय बनाने का प्रयत्न कर जिससे तुझे स्वयमेव शान्ति और सुख प्राप्त होगा इस प्रकार प्रत्येक मानव जातियों ! आप प्रतिदिन अपनी २ आत्मा को समझाने का प्रयत्न करो, ऐसी सद्गुरु की आज्ञा है ।

श्रीदस्य सद्गुरोः संगः, कृतोन कारितो यदि ॥
कृतस्य कारितस्यान्य, संगस्य किं प्रयोजनम ॥ ३२ ।

संस्कृतार्थ—हे आत्मन् ! श्रीदस्य सद्गुरोः वीतरागगुरोः संगः सहवासः यदि न कृतः नापि कारितः तर्हि कृतस्य कारितस्य वा अन्येषां संगस्य किं प्रयोजनम् सिद्धयति ?

अर्थ—यदि कल्याण कारक सद्गुरु की सङ्गति न की तो अन्य की सङ्गति करने से भी क्या प्रयोजन ?

भावार्थ—हे आत्मन् ! तू बहुत सोच विचार कर कि, अनादि काल से तू ऐसे मनुष्यों की संगति करता आया जिससे तुझे सर्वत्र नाक रगड़ते हुए भटकना पड़ा और ऐसी २ आपत्तियों का तुझे सामना करना पड़ा कि जो वचन से भी नहीं कहे जा सकते । तो क्या ! अबभी तेरी बुद्धि ठिकाने नहीं आई ? जिनके द्वारा तेने अनन्तवार दुःख सहे फिर से बार २ तू उनके पीछे पड़ता है । हे आत्मन ! यह तो तेरे लिये बड़ी लज्जा

की बात है। क्योंकि जिनके पीछे लगने से केवल दुःख के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं आता है। जैसे गधे की पूछ पकड़ने से मुंह टूटने, दांत गिरने के सिवाय और क्या लाभ होता है? इसलिये तू विवेक पूर्वक विचार करके परमानन्दवर्ति शुद्ध चिद्रूप सद्गुरु की घड़ी दो घड़ी जितना भी बन सके सङ्गति करेगा उतनी ही तेरी आत्मा को शांति व कल्याण की प्राप्ति होगी।

यदि यह कार्य सारा दिन न बन सके तो घड़ी दो घड़ी जितना भी बने अपनी आत्मा की शांति व कल्याण के लिये सत्संगति करनी चाहिये।

चेतसि प्राणिमात्राणां, सन्निराकुलता यदि।
न कृता कारिता ह्यात्मन, किं कृतं तर्हि मे वद॥ ३३॥

संस्कृतार्थ—प्राणिमात्राणां सर्वेषां सत्वानां चेतसि मनसि यदि समीचीना निराकुलता शांतिः न कृता नापि कारिता तदा हे आत्मन्! मे वद त्वया किं कृतं? न किमपीत्यर्थः।

अर्थ—हे आत्मन्! यदि तूने सब प्राणियों के हृदय में सच्ची निराकुलता न स्थापित की और न कराई तो बताओ फिर किया ही क्या है?

भावार्थ—हे आत्मन् ! तू इतनी आकुलता और सङ्कट में पड़ा हुआ है कि उसके अन्दर तू किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया है। और तेरा जीव हमेशा इतना व्याकुल रहता है कि क्या करना चाहिए अथवा क्या नहीं करना चाहिए इसका तुझे कुछ भी भान नहीं है। अब भी हे आत्मन् ! तू सोच विचार कि इतनी आकुलता से तुझे क्या मिलेगा। जो कुछ तुझे मिलना है वह तो पूर्व भव के पुण्य से मिल जायगा फिर व्यर्थ आकुलता करने से क्या लाभ क्योंकि लाभ तो स्व पर कल्याण करने से ही होगा।

इसलिये हमेशाँ उत्तम कर्तव्य को करते रहना चाहिये तबही तेरी आत्मा में निराकुलता रहेगी। इसी प्रकार आत्मन् ! तू स्वयं [illegible]ल बन और विश्व में समस्त प्राणियों को निराकुल बनाने का प्रयत्न कर, क्योंकि— दुनिया में— निराकुलता ही सुख है और आकुलता ही दुःख है इसी तरह सोच विचार कर प्रत्येक प्राणिमात्र को शांति व धैर्यपूर्वक कार्य करते रहना चाहिए।

आत्मवत्प्राणिमात्राणामुपरि न दया कृता।
मन्ये ऽहं तत्समं पापं महदन्यः कृतं न को॥ ३४॥

संस्कृतार्थ—यथा स्वात्मनि दयाविधानमिष्यते तद्वदेव हि आत्मन् ! यदि त्वया सर्वेषां जीवानामुपरि दया करुणा न कृता तदा तत्समं, महत्पापं को लोके अन्यैः न कृतं इत्यहं मन्ये।

अर्थ —यदि अपने समान ही सब जीवों को तूने दया दृष्टि से नहीं देखा तो हे आत्मन ! तेरे समान इस दुनिया में किसी ने पाप नहीं किया।

भावार्थ—अपने प्राणों का मूल्य सभी समझते हैं उसी भांति यदि सबके प्राणों की भी रक्षा का ध्येय रखा जाय तो सर्वत्र शांति ही रहती है। यदि किसीने दूसरों के प्राणों को तुच्छ समझ कर दया रहित प्रवृत्ति की तो वहीं से व्यवस्था भङ्ग हो जाती है, इसलिए दया रहित क्रूर परिणाम या क्रिया ही सब पापों का आदि स्रोत निकास है। अतएव सम्पूर्ण बुद्धिमान पुरुषों को अपने मन को समझाना चाहिए कि दूसरों के प्रति कठोरता के भाव न रक्खें जिससे विश्व की शांति व्यवस्था स्थिर रहे। बस यही भाव सब जीव रक्खें तो संसार में सच्ची बन्धुता प्रगट हो जावे, जिसका कि प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त करना प्रधान कर्तव्य है। तथा अपने प्राणों की रक्षा करना और दूसरों के प्राणों की हत्या करना यह पशुओं का आचरण है क्योंकि उनमें [पशुओं में] विवेक नहीं है। यदि पशुओं से मनुष्यों में अन्तर है तो केवल विवेकता ही है, और अपने प्राणों के समान विश्व के सम्पूर्ण प्राणियों की हर तरह से रक्षा करना ही विवेक है, और यही मनुष्य-कर्तव्य है। इसके बिना हे आत्मन्! तू भले ही अपने को मनुष्य व बुद्धिमान समझ किन्तु तू पशु के समान है। इस प्रकार

प्रत्येक मनुष्यको प्रति दिन अपनी आत्मा को समझाना चाहिए।

येन केनाप्युपायेन स्वात्मा बुद्धो निरञ्जनः।
भवेत्स्वानन्द मूर्तिर्हि कुरु कार्यं न तथा वरम्॥ २॥

संस्कृतार्थ—येन केनापि उपायेन रीत्या स्वस्यआत्मा जीवः बुद्धः ज्ञानमयः निरञ्जनः निर्लेपः; स्वस्यानन्दमेव मूर्तिर्यस्य सः एवंभूतः भवेत् तथा तेन प्रकारेण वरं श्रेष्ठ कार्यम् कर्तव्यं कुरु सम्पादेयम्॥

अर्थ—जिस किसी भी उपाय से अपनी आत्मा ज्ञानमय निर्विकार आनन्दमूर्ति बन जावे, उसी तरह अपने श्रेष्ठ कर्तव्य का आचरण कर।

भावार्थ—हे आत्मन्! आत्माको निर्विकारी निरञ्जन बनाना ही नर जन्म का फल है और शुद्ध आत्मा को बनाने के लिए तुझे बड़ी बड़ी आपत्तियां सहन करनी पड़ेंगी। जैसे कि सौ बार तपाया हुआ ही सोना कण्ठ में पहनने लायक हो जाता है इसी तरह से उत्तम मोती, हीरा इत्यादि चीजों को कूट मार से परीक्षा करके ही कण्ठ में पहनाया जाता है और उसकी परीक्षा की जाती है। और मूर्ति जब खूब मार खाती है तभी पूजने योग्य बनती है, इसी तरह से दूध भी खूब मंथन किया जाय तभी उसमें से घी खाने योग्य निकलता है। इसी तरह हे

हे आत्मन ! तुझे भी निर्विकार होने के लिए अनेक भव से अभ्यास करना पड़ता है और उसके अन्दर तुझे कोई जहर भी पिलाएगा तो उनको हर तरह से तुझे अमृत पिलाने का प्रयत्न करना पड़ेगा, तब कहीं तेरा आत्मा शुद्ध बुद्ध चिद्रूप परमानन्द मूर्ति निर्विकारी जीवनमुक्त बनेगा न कि विषय कषाय आदि में पड़ रहने से, मौज-मजा करने से तेरा आत्मा निर्विकारी वा जीवनमुक्त बनेगा।

इसलिए तु हर तरह से अपनी आत्मा को शनैः शनैः प्रयत्न करके निर्विकारी सर्व सङ्ग त्यागी बनाने का प्रयत्न कर। क्योंकि यह अनादिकाल का ससर्ग है अतः एकदम आत्मा शुद्ध नहीं बन सकेगी जसे एक २ अक्षर पढ़ने वाला विद्यार्थी महान पण्डित हो जाता है एवं बाल्यकाल से अभ्यास करता हुआ पच्चीस व तीस वर्ष तक अभ्यास करेगा तभी व्याकरण, न्याय आदि का ज्ञाता बनता है। और एक एक बूँद पानी मिल कर नाला बनता है और कई नाले मिल कर नदी; व कई नदियां मिल कर बड़ा भारी समुद्र बनता है। तथा इसी प्रकार एक एक कण अनाज मिल कर बड़ी भारी धान्यराशि एकत्रित होती है। इसीके अनुसार हे आत्मन् ! तु एक एक भव में एक एक विषय कषाय व मान का त्याग करेगा तो अवश्य ही एक दिन निरञ्जन निर्विकारी सर्व संग परित्यागी नारायण बनेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं। अतः तु स्वयं कायरता एवं

निराशता को छोड़ कर यदि अभ्यास करेगा तो अवश्य अपनी आत्मा को परमात्मा बना सकेगा। इसी प्रकार प्रत्येक मानव-मात्र को अपनी २ आत्मा को समझाना चाहिए। यह कार्य मैं कैसे करूंगा कैसे होगा, इस प्रकार निराशतापूर्वक विचार करना मनुष्य का कर्तव्य नहीं है।

मनुष्य का कर्तव्य तो यह है कि आई हुई घोर आपत्त को भी लात मार कर उत्साह पूर्वक कार्य करना चाहिये जिससे आत्मा परमात्मा बन जायगी और विश्व शांति होगी ॥

बुद्धेः सुयुद्धं भवितव्य मेव, मिथो नराणां भुवि विश्वशांत्यै।
स्वप्नेऽपि नम्या नर नाशकारी, नौ वायुयानादिक यंत्रकानां।

संस्कृतार्थ—बुद्धेः मतेः विचारस्य वा, युद्धं, मननं, चित्तचिन्तनं परस्परं संज्ञापनं भुवि लोके केषां ! नराणां विश्वशांत्यै प्राणि-मात्राणां शांत्यर्थं न खलु स्वमान स्यात्यादि वृद्धयर्थं भवितव्यं अवश्यमेव किन्तु स्वप्नेऽपि स्वप्नावस्थायामपि नर संहारकं नौका वायुयानं धुम्रशकटादिकानां युद्धं कदापि नैव भवितव्यं इतितु मानवजाति मात्रैः चिन्तनीयं यतो नर जन्म सफलं भवेत् तथा च विश्व शांतिः भवेत।

अर्थ—मनुष्यों को संसार में विश्व की शांति के लिये परस्पर बुद्धि का युद्ध अर्थात् विचार तर्क आदिद्वारा युद्ध करना चाहिये किन्तु स्वप्न में भी मनुष्यों का नाश करने वाले वायुयान जहाज

बम तोप इत्यादि द्वारा युद्ध नहीं करना चाहिये।

भावार्थ—विश्व में दो जातियां हैं— एक तो मनुष्य जाति व दूसरी पशु जाति; इन दोनों के चाल चलन, आचार विचार आदि प्रत्येक क्रियाओं में रात दिन का अंतर है इसलिये पशु में यह बुद्धि नहीं कि प्राणी मात्र का हित करना मेरा कर्तव्य है केवल खाने पीने, व विषयों में ही उनकी बुद्धि दौड़ती है। और उसी विषय की पुष्टी के लिये खाने पीने आदि के उद्देश से गधा जिस तरह से दूसरे को लात मारता है तथा कुत्ता व्याघ्र आदि अपने दांतों से दूसरों को काटते हैं तथा नाखुनों से दूसरे प्राणियों का संहार करते हैं एवं बलवान बैल आदि दुर्बल प्राणियों को मार कर भगा देते हैं। और आप स्वयं उन्मत्त हो कर फिरते हैं यदि यही वृत्ति मनुष्यों में रहे तो फिर पशुओं में और मनुष्योंमें क्या भेद रहा? मनुष्य जाति मात्र का आपस में लड़ना व लड़ाना धर्म नहीं है। मनुष्य यह कार्य लड़ना झगड़ना पशुओं से सीखता है अथवा पशु सरीखे ही देश में व राष्ट्र में मनुष्य हों उनसे सीखता है। इसलिये यह स्वभाव सिद्ध है कि लड़ना झगड़ना मनुष्यों का लक्षण नहीं है। अतः मानव जाति मात्र का वायुयान, जहाज, तोप टैंक बम इत्यादिक वैज्ञानिक यन्त्रों से परस्पर में लड़ना यह अपने ही लश्र से अपना ही गला काटने के बराबर हुआ क्योंकि जितने भी वैज्ञानिक आविष्कार बनाये हैं वे सम्पूर्ण

विश्व की शांति के लिये बनाये हैं । लड़ने के लिये नहीं अतः इन वैज्ञानिक यंत्रों को जहां जिनकी आवश्यकता हो वहां पहूंचा कर सम्पूर्ण संसार को सुखी बनाने का प्रयत्न करना चाहिये । कदाचित विश्व शांति के लिये मनुष्य को लड़ना ही हो तो परस्पर में बुद्धिका युद्ध करना चाहिये अर्थात परस्पर वार्तालाप मे विश्व शांति का उपाय चिन्तवन करना चाहिये । यही मनुष्य का वास्तविक बुद्धि युद्ध है । इसके बिना और युद्ध करना स्वयं अपना पशु पना प्रगट करना है इसलिये प्रत्येक मानव जाति को अपनो आत्मा को इसी प्रकार समझाना चाहिये तथा तद्रूप आचरण करते रहना चाहिये । व स्वयं सुखी बनने का व दूसरों को सुखी बनाने का प्रयत्न करना चाहिये ।

विशेष शिक्षा

युद्ध से कभी भी विश्व में सुख व शांति नहीं होगी कदाचित् यह मानलिया जाय कि किसी राजा ने समस्त विश्व को जीत लिया तो भी मरते समय पृथ्वी उनके साथ नहीं गई । अथवा कालान्तर में दूसरा राजा या उसीका पुत्र उसको मार देगा या जेल में बन्द करवा देगा । पूर्व इतिहास के देखने से विदित होता है कि राजा श्रेणिकको उसके पुत्रने ही जेलमें रक्खा था । और भी अनेक राजाओं ने इसी प्रकार किया था । जैसे शाहजहां को औरंगजेबने कैद किया । तथा अकबर के विरुद्ध

जहांगीर ने उपद्रव किया। जहांगीर के विरुद्ध शाहजहां ने उपद्रव किया। इत्यादि और भी अनेक इसी प्रकार के उदाहरण इतिहास में पाये जाते हैं। इसलिये हे राजाओं! व्यर्थ क्यों फिर पाप कमाते हो। आजकल जो विश्व में लड़ाई होरही है प्रायः उसका कारण पहले का लड़ाई सम्बन्धी इतिहास विदित होता है। क्योंकि प्राचीन युद्ध सम्बन्धी इतिहास को देख कर ही आजकल राजा वर्ग युद्ध में प्रवृत्ति करते हैं। इसलिये अन्याय युद्ध सम्बन्धी सम्पूर्ण इतिहास को एलमारी में बन्द करवा देना चाहिये। जिससे संसार में कभी युद्ध होने की संभावना न हो।

कौ पंच पापानि न केऽपि कुर्युः नोक्त्वेति तद्धेतु निरोध एव।
कार्यो यतः स्यात् सकलात्मशान्तिः पुनः नृणांपापमतिर्भवेन्न॥

संस्कृतार्थ —कौ पृथिव्यां हिंसानृतस्तेय मैथुनलोभानिपंच पापानि, नीचतमानि केऽपिमानवाः नकुर्युः, इति तु केवलं मुखेनैव नैव वक्तव्यं, किन्तु पंच पापानां कारणानां निरोधः कार्यः

यतो—यस्मात् कारणात् भुवि लोके प्राणिमात्राणां सुख शांतिः भवेत् स्यात् पुनः केषामपि मनुष्याणां हृदये पाप बुद्धिः दुष्टस्वभावो न भवेदिति भावः।

अर्थ—संसार में हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, लोभ इत्यादि

पांच पाप कोई भी न करे ऐसा केवल वचन मात्र से ही न कहें किन्तु इनका निरोध अर्थात् उन पापों के कारणों को अवश्य ही रोकना चाहिये जिससे सम्पूर्ण आत्माओं को शांति होवे तथा मनुष्यों की पाप बुद्धि न होवे।

भावार्थ—संसार में प्रायः मनुष्य यह कहा करते हैं कि हिंसा झूठ, चोरी, कुशील व लोभ आदि पञ्च पाप कोई भी मत करो। इतना कहने पर भी लोक में इन पाप वृत्तियों को नहीं करने वाले बहुत थोड़े ही पुरुष मिलेंगे इसमें मुख्य कारण यह है कि मनुष्य कारणों को न रोक कर कार्यों को रोकने का ही प्रयत्न करते हैं, सो कारणों को बिना रोके कार्य नहीं रुकते। जैसे किसी मनुष्य को ज्वर चढ़ा हो तो ज्वर को न रोक कर ज्वर के चढ़ने के कारणोंको ही रोकना चाहिये। क्योंकि कारणों के रुकने से कार्य भी रुक जायेंगे। जैसे नदी में नाव डूबने का कारण जो छिद्र है उसी छिद्र को यदि रोका जाय तो अवश्य ही नाव का डूबना बन्द हो जायगा और छिद्र को न रोक कर यदि नाव की रक्षा करना चाहो तो नाव की कदापि रक्षा न हो सकेगी। इसीके अनुसार पञ्च पापों का मुख्य कारण निरुद्योगिता है। अतः प्रत्येक मनुष्य को यथोचित कार्य के अनुसार उद्योग में लगा दिया जाय तो पञ्च पाप अवश्य रुक जाएँगे।

निरुद्यमी मनुष्यही हिंसा करने, शिकार करने, जुआ आदि खेलने में, जीवोंको मारने में लगेगा और उसी मनुष्यको समयानुसार काम करने में लगा दिया जाय तो हिंसादिक अधःकर्म के करने में कभी प्रवृत्त नहीं होगा। इसी प्रकार से झूठ में भी वही प्रवृत्त होगा जो निकम्मा अर्थात् उद्योग विहीन है तथा वही मनुष्य निन्दा करने में तथा इधर उधर चुगली करने में प्रवृत होगा कि जो निरुद्यमी होगा।

सम्पूर्ण विश्व में २०० वा २५० करोड़ मनुष्य होंगे किन्तु उनमें से बहुत कम विरले ही ऐसे मनुष्य मिलेंग जो कभी झूठ नहीं बोलते हों। और संसार में अनेक ऐसे मनुष्य हैं जो महात्मा का भेष धारण कर आपस में मत मतांन्तर में वैमनस्य की जागृति कराते हैं जिससे विश्व में सर्वत्र अशांति फैली हुई है। ऐसे महात्माओं का खास कर्तव्य तो यह है कि दिन भर शांतिसे मौन धारण कर ध्यान स्वाध्याय आदि में लगे रहें। तथा दिन में एक आध घण्टा निष्पक्षपात से विश्व कल्याण की भावना से उपदेश देवें तत्पश्चात् शान्त स्वभाव से मौन रहें। जिस प्रकार बिजली थोड़ी सी चमककर शान्त हो जाती है तथा मां और बहिन को भी प्रति दिन अपने घर के कार्यों से निवृत्त होकर शेष समय में धर्म ध्यान, कोट, कमीज इत्यादि कपड़ों की सिलाई तथा चर्खा वगैरह कताई, बुनाई में व इसी प्रकार अनेक

प्रकार की कलाओं के सीखने में समय व्यतीत करना चाहिए। इधर उधर की व्यर्थ गप्पें लड़ा कर यह भव और पर भव दोनों खराब नहीं करना चाहिए। तथा घर के मालिक को भी चाहिए कि वह अपनी स्त्री, पुत्री, बहिन आदि को सच्चे उद्योग में सतत लगाता रहे इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यमात्र को व्यर्थ की झूठ, गप्प इत्यादि बातों को छोड़ कर हमेशा सच्चे उद्योग में लगे रहना चाहिए।

तीसरा पाप चोरी है। चोरी भी वही करता है जिसके पास न तो खाना है न पैसा, केवल निरुद्योगी है। ऐसे चोरी आदि कार्य में रत बेकार मनुष्यों पर राजा महाराजाओं का ध्यान रहना चाहिए। और लोक में ऐसे मनुष्यों को उनके योग्य कार्य में लगाना चाहिए जिससे कोई बेकार न रहे और प्रजावर्ग समस्त सुखी रहे। फिर तो संसार में कहीं भी चोरी नहीं होगी।

राजाओं का जन्म ही विश्व कल्याण के लिये है। स्व पर कल्याण करने वाले होने से ही राजाओं को देवता माना है। जैसे चन्द्रमा के बिना करोड़ों तारागणों के होने पर भी विश्व की शोभा नहीं है उसी प्रकार राजाओं के बिना भी विश्व की शोभा नहीं है। राजाओं को प्रजा के प्रति इतना प्रेम प्रगट करना चाहिए कि वह प्रजा को भोजन कराके फिर भोजन करे और

प्रजा के सुख में सुख तथा प्रजा के दुःख में दुःख समझे। जैसे माता पुत्र को पालन करते हुए पहले पुत्र को भोजन आदि देकर पश्चात् भोजन करती है। धेनु पहले अपने बछड़े को दूध पिलाती है पश्चात घास चरने के लिए जाती है इसी प्रकार राजाओं को भी प्रजा को पुत्र समझ सच्चे उद्योग में हमेशा लगाते रहना चाहिए और प्रजा को भी राजाज्ञा को फूल माला के समान जान कर कंठ में पहनना शिरोधारण करना चाहिए। और चोरी झूठ आदि नीच कृत्यों को छोड़ कर स्व पर कल्याण कारी उद्योगों में लगना व लगाना चाहिए। ऐसा होने पर फिर तो कभी संसार में चोरी का निशान भी नहीं रहेगा।

चौथा पाप कुशील है। उम्र के साथ विधिपूर्वक विवाह न होने से तथा बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह होने से देश में व्यभिचार अपनी चरम सीमा को पहुँचा हुआ है एवं विधवाओं की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है अतएव राजा महाराजाओं को अपने अपने राज्य में वृद्ध विवाह, बाल विवाह, और अनमेल विवाह को बहुत शीघ्र ही रोकना चाहिए। और विधि के अनुसार समय पर ही विवाह कराना चाहिये जिससे देश में विधवाओं की संख्या कम होवे। और सदाचार का सर्वत्र प्रचार बढ़ता रहे। इसी के होने पर ही सर्वत्र शील का प्रचार व व्यभिचार नाश होगा। शील पालना मनुष्य का खास कर्तव्य है

शील ही से बलिष्ठ, आत्म शक्ति धारी व स्व पर कल्याण करने योग्य बनता है।

इससे शील को पालना प्रत्येक मनुष्यमात्र का कर्तव्य है।

इस दुष्ट लोभ ने सम्पूर्ण विश्व में हाहाकार मचा रक्खा है। इस लोभ के वश होकर के क्या राजा और क्या प्रजा सब पशुवृत्ति का अवलम्बन करके सम्पूर्ण विश्व को दुःख दे रहे हैं। इससे कदापि सुख व शांति नहीं हो सकती। और मनुष्य का कर्तव्य नहीं है। किन्तु यह पशुवृत्ति है। जैसे बिल्ली छिप २ करके और निरुद्यमी होकर चूहे पर आक्रमण करके उसकी जिन्दगी को पूर्ण कर देती है, जैसे सांप सर्वथा निरुद्यमी होता हुआ चूहा आदि के घरमें प्रवेश कर उनका भक्षण कर उनके रहने का मकान भी अपने कब्जे में कर लेता है, जैसे बगुला पानी में एकाग्र चित्त से मच्छियों के शिकार के लिये ध्यान करत है और मौका आने पर मछलियों के सारे वंश को ही नष्ट करदेता है, जैसे सिंह बड़ा भारी शक्तिवान् होता हुआ प्राणियों की रक्षा करना छोड़ कर प्राणियों को मार कर अपना पराक्रम दिखाता है जैसे बन्दर बिलकुल निरुद्यमी होकर बैठा रहता है और शीत, उष्ण जैसे महान् दुःखों को सहन करता है, समय आने पर किसी घर बगीचे में घुस कर के फल फूल आदि को विध्वंस कर देता है तथा सारे बगीचे को ही नष्ट

कर देता है। तथा कोई निरुद्यमी पुरुष हाथ में जाल लेकर जंगल आदि में उसे बिछा कर निरपराधी गरीब स्वतन्त्र जीवों को नष्ट कर अपना कार्य साधता है व अपने नीचपने को दर्शाता है पूर्वोक्त ठीक इसी वृत्त को राजा व प्रजा तथा सम्पूर्ण देश ने अवलम्बन किया है।

जैसे एक राष्ट्र बिलकुल निरुद्यमी होता हुआ स्वेच्छाचार में मग्न होकर अपनी आशाओं व तृष्णाओं को तृप्त करने के लिये अनेक राष्ट्रों पर आक्रमण करता है। तथा अनेक राजा वर्ग बड़े २ वैज्ञानिक यंत्रों से विश्व की रक्षा करना छोड़ कर उन्हीं वैज्ञानिक यंत्रों से अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये सारे देश को ही विध्वंस करते हैं अर्थात् स्वयं धन न कमा कर दूसरे के ऊपर धावा करते हैं। सो—

हे राजाओं! व प्रजाओं! इस तरह से आप की तृष्णा इन अनुचित कृत्यों से कदापि नहीं मिटेगी; किन्तु चौगुनी बढ़ती ही जायगी। जैसे तृण के ऊपर पड़े हुए जलबिन्दु से कोई भी मनुष्य अपनी प्यास (तृष्णा) को नहीं बुझा सकता। यदि वही मनुष्य मीठे जल से भरे हुए सरोवर, नदी, वापिका आदि का जल पीवेगा तो अवश्य ही उसकी तृष्णा प्यास शान्त होगी।

उसी प्रकार दूसरे देश को अथवा राज्य को हड़प करके कोई भी मनुष्य अपनी तृष्णा को कल्पान्त काल में भी शांत नहीं कर सकेगा। इसलिये हे मानव जातियों! इस व्यर्थ के कोलाहल को बंद करिये।

और अटूट धन देने वाली यह पृथ्वी है अतः इसका वास्तविक सार्थक नाम वसुंधरा है। सारे विश्व की तृष्णा को शांत करने वाली यही वसुन्धरा पृथ्वी ही है। विश्व के सिवाय यदि दस गुना विश्व बढ़ जाय तो भी यह वसुंधरा सब की आशा को तृप्त कर देगी। इसलिये प्रत्येक राष्ट्र को अपनी प्रजाओं को इतनी उद्यमशील बना करके वसुंधरा से इतना धन कमाना चाहिये कि वह कभी समाप्त न होवे। और धन पैदा करने के लिये अपने २ राष्ट्र में खूब प्रयत्न करना चाहिये। और सम्पत्ति से सारे खजानों को भर देना चाहिये। और उन खजानों का दरवाजा अपने २ राष्ट्र की प्रजा के लिये तो अवश्य ही खुला रहना चाहिये किन्तु पर राष्ट्र के लिये भी खुला रहना चाहिये यहां रंच मात्र भी लोभ नहीं करना चाहिये।

इतना ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण राष्ट्र से यह विनय करना चाहिये कि आप जितना द्रव्य चाहें ले जाइये और हमारे परिश्रम को सफल बनाना। यह सब सम्पत्ति आपकी ही है। इस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र को दूसरों को बिना कर्ज के देने के लिये ही

भाव रखना चाहिये; स्वप्न में भी लेने के भाव नहीं होने चाहिये। कदाचित् स्वाभाविक कोप हो जैसे हिमपात, अग्नि, भूकम्प, आदि से सारा देश जल गया हो अथवा नष्ट होगया हो तो उस वक्त तो परराष्ट्र देते ही हैं उसे लेना ही चाहिये और लेकर अपने राष्ट्र की प्रजा को सुखी बनाना चाहिये। इसके सिवाय दूसरों के धन सम्पत्ति की कल्प काल में वांछा नहीं रखनी चाहिये। अपनी कला कौशल्य से व विज्ञान आदि से सारे विश्व को अपनी धन सम्पत्ति से तृप्त करना चाहिये। यही मानव जाति मात्र का कर्तव्य है और इस मनुष्य कर्तव्य के करने पर यह लोक मनुष्य-लोक ही नहीं किन्तु देव-लोक बनेगा। और हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, लोभ आदि पाप दुनिया से अपना मुँह काला करके सदा के लिए पलायन कर जाएँगे।

सारांशः

तुभ्यं ह्यात्मन ...यति ह्युपदेशोऽस्ति चान्तिमः॥
अतः स्यात्सफलं जन्म नोचेत्तर्हि वृथा श्रमः॥ ३६॥
तत्कृत्यं कार्यमेवात्मन् यतो वैरं मिथः पुनः॥
वा कदाप्य कृत्यस्यावश्यकता भवेन्नते॥ ३७॥

संस्कृतार्थ—हे आत्मन्! तुभ्यं स्वस्मै परस्मै वा इत्येवान्तिमः उपदेशः शिक्षणमस्ति अतः अस्मदिव जन्म जीवनमिदं सफलं अन्यथाऽन्य प्रकारेण श्रमः आयासः वृथा स्यात् उत आत्मनः

निर्मलीकरणाख्यं कृत्यं कार्यम् यतो हि मिथः परस्परं वैरं द्वेष भावः न भवेत् तथा तदाऽपि अन्य कृत्यस्यापि आवश्यकता न भवेत् ।

अर्थ—हे आत्मन् ! स्वयं तेरे लिये और दूसरों के लिये भी यही अंतिम उपदेश है इसीसे जन्म सफल होता है नहीं तो सारा परिश्रम व्यर्थ है । हे आत्मन ! अपने को निर्मल निरञ्जन बनाना यही कर्तव्य है इसीसे परस्पर में वैर तथा अन्य कृत्य की आवश्यकता न रहेगी । अर्थात् कृतकृत्य हो जाओगे ।

भावार्थ—हे आत्मन ! तुझे बहुत कहने से क्या प्रयोजन ? यह तुझे अंतिम उपदेश है कि विश्व शांति के लिये ऐसे कार्य करना कि फिर तुझे कभी उस काम के करने की आवश्यकता न पड़े तथा आत्म शांति व विश्व शांति के लिये तुझे ऐसे कार्य करने चाहिए कि फिर तुझे कभी उसके सोचने की चिन्ता न रहे । और विश्व में कभी किसी से वैर व वैमनस्य न रहे । यही सद्गुरु का आशय है सो ठीक है । क्योंकि माता पिता के हमेशा ये भाव रहते हैं कि पुत्र सुखी और स्वस्थ रहे उसी प्रकार सद्गुरु का पुत्र सारा विश्व ही है । अतः पुत्र का हित चिन्तवन करना ही गुरु का कर्तव्य है और उसीका नाम सद्गुरुता है ।

अभिप्रायोऽस्ति मे चैवं स्वात्मतत्त्वमस्यधीमतः ॥
सूरेः श्री कुंथुसिन्धोश्च कृत्याकृत्यादि वेदिनः ॥ ३८ ॥

ज्ञात्वेति सद्गुरोः भावं तदाज्ञां परिपालय ।
यतः स्यात्सफलं जन्म क्रियादि फलदो भवेत् ॥ ३९ ॥

संस्कृत टीका—धीमतः स्वात्मतत्त्वस्य कृत्याकृत्यादि वेदिनः सद्गुरोः सूरेः श्री कुंथुसिंधोः ग्रन्थकर्तुः अभिप्रायोऽस्ति स उक्तः इतिभावं ज्ञात्वा तदाज्ञां परिपालय यतः जन्म सफलंस्यात् । एवं क्रियादिः च फलदः भवेत् ।

अतीव सरलार्थत्वाद्योन लिखितः ॥

अर्थ—परम बुद्धिमान, कृत्याकृत्य विवेकी, सद्गुरु आचार्य श्री कुंथुसागरजी महाराज ने जो अभिप्राय व्यक्त किया है उसका भाव समझ कर उनकी [गुरु की] आज्ञा का पालन करो जिससे कि जन्म सफल हो और क्रिया फलदायिनी हो ।

भावार्थ—श्री पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय, विश्वोद्धारक, विद्वद्वर्य आचार्य श्रीकुंथुसागरजी महाराज आशीर्वादात्मक आज्ञा भव्य प्राणियोंको देते हैं । सो उस आज्ञाको पालन करके प्रत्येक मनुष्यमात्र कृतकृत्य होवो तभी इस मनुष्य पर्याय की सफलता होगी ।

प्रशस्ति

आचार्य शान्ति सिन्धोश्च जगत्पूज्यस्य धीमतः ।
सूरेः सुधर्म सिन्धोर्हि प्रसादात्कुंथु सूरिणा ॥ ४० ॥

लिखितो विश्ववन्द्येन विश्व हिताय धीमता।
मनुष्य कृत्य सारोऽयं ग्रंथः सच्छान्तिदः सदा ॥ ४१ ॥

अन्वय—जगत्पूज्यस्य धीमतः, आचार्य श्री शांतिसिन्धोः सूरेः श्री सुधर्म सिन्धोः हि प्रसादात्, विश्व वन्द्येन, धीमता श्री कुंथु सूरिणा विश्वहिताय अयं मनुष्य कृत्य सार नामकः ग्रन्थः, कीदृशः सदा सच्छांतिदः लिखितः विरचितः।

अर्थ—जगत्पूज्य ज्ञानी, श्री आचार्य शांतिसागरजी एवं सुधर्म सागरजी के प्रसाद से, अनुग्रह से विश्व कल्याण के लिये विश्व-वन्द्य आचार्य श्री कुंथुसागरजी ने शांति देने वाला यह 'मनुष्य कृत्य सार' नामक ग्रंथ रचा है। सद्गुरुओं का स्मरण करना यह तो सत्पुरुषों का कर्तव्य ही है।

स्वयं भो! शेष कृत्यानि दुःखदानि भवे भवे।
कुर्वन्त्येकाग्रचित्ते नोपदेशेन विना जनाः॥ ४२॥
अतएवात्रभव्यानां सिद्धये सद्गुरुणार्थतः।
सत्कृत्यानां सुदात्त उपदेशः सुखप्रदः॥ ४३॥
सर्वेषां प्राणिमात्रेभ्यः भो चिन्तामणि सद्भुवि।
सुख शांति विधातर्थो जीयाद्याचन्द्र तारकम्॥ ४४॥

अन्वय—भो लोके भवे भवे दुःखदानि शेष कृत्यानि भोगोप भोगादीनि, जना उपदेशेन विना एव एकाग्रचिन्तन स्वयं कुर्वन्ति अतएव सद्गुरुणा अर्थतः वस्तुतः भव्यानां सिद्धये सुखप्रदः श्री

सत्कृत्यानामुपदेशः मुदा दत्तः । तदेतद्भुवि लोके सर्वे प्राणिभ्यः चिन्तामणिवत् सुख शांति विधाता सन् आचन्द्र तारकम् जीयात् ।

अर्थ—भव भव में दुख देने वाले अन्य भोग आभोग परिग्रह का सञ्चय, आदि कृत्य तो दुनिया के लोग बिना ही उपदेश से दत्तचित्त होकर करते हैं, इसलिये सद्गुरु ने वास्तव में भव्यों के हितार्थ यह सत्-कर्तव्यों का ही उपदेश दिया है । सब प्राणियों को श्री और चिन्तामणि के समान सुखदायक और शांति का विधाता यह ग्रन्थ, तारे और सूर्य चन्द्रमा जब तक हैं तब तक जयवन्त रहें ।

सकीर्तिन्यायनिष्टेन मिथश्शांति प्रदायिना ।
लक्ष्मणसिंह भूपेन स्वात्मवत्सर्वपालिते ॥ ४५ ॥
गिरिपुरे धनाढ्ये च तडागोद्यान शोभिते ।
प्रभोत्तोत्र समाकीर्णे स्थितवाहीश्वर मन्दिरे ॥ ४६
मोक्षं गते महावीरे अहिंसा धर्म प्रचारके
चतुर्विंशति संख्याते अष्ट षष्ठ्यधिक शते ४७
श्रावण शुक्ल पक्षे च अष्टम्यां बुधवासरे ॥
'मनुष्य कृत्य सारोऽयं' ग्रन्थो ग्रन्थि विनाशकः ४८
श्रीमता स्वात्मनिष्टेन कुंथुसागर सूरिणा
लिखितः प्राणिनां शान्त्यै सख्यात्यादिक हेतवे ४९

संस्कृतार्थस्त्वेतेषामतीव सरलत्वान्न लिख्यते ।

अर्थ—प्रजा को शांतिसे अपने ही समान पालन करने वाले,

नीति व न्यायनिष्ठ श्री लक्ष्मणसिंह भूप के द्वारा शासित, तालाब बगीचे आदि से सुरम्य तथा धनाढ्य डूंगरपुर [गिरिपुर] में आदिनाथ भगवान के मन्दिर में स्थित होकर यह ग्रन्थ पूर्ण किया है।

अहिंसा धर्म के महान् प्रचारक महाप्रभु महावीर के २४६८ निर्वाण सम्वत् में श्रावण शुक्ला अष्टमी बुधवार को मन के सब शल्यों को मिटाने वाला मनुष्य के सम्पूर्ण कार्यों का सार है जिसमें ऐसा यह ग्रन्थ आत्मनिष्ठ श्री आचार्य महाराज कुंथुसागरजी ने शांति लाभार्थ रचा है। किसी नाम बड़ाई आदि के लिये नहीं रचा है।

भावार्थ—वास्तव में श्री लक्ष्मणसिंहजी राजा प्रजावत्सल, धर्मनिष्ठ, विवेकशील, शांतिप्रिय, आत्महित मुमुक्षु हैं। तथा इनके भाई माता पिता आदि सबही धर्मप्रिय व धर्ममूर्ति हैं। इनका जन्म ही सद्गुरु व विश्व की सेवा के लिये हुआ है।

आपके राज्य में सम्पूर्ण प्रजा सुखी व आनन्द में है। आज कल सर्वत्र हाहाकार कोलाहल व अशांति है किन्तु आपके राज्यमें पूर्णतः शांति है। यहां पर वृष्टि भी समय पर हुई है।

भाग्योदय से यहां पर पूज्यपाद आचार्यवर्य श्री १०८ श्री कुंथुसागरजी महाराज ने चतुर्विध संघ सहित पधार कर चातुर-

मास किया है। इस चार मास के अन्दर यहां के राजा साहब व सम्पूर्ण राज्य कुटुम्ब ने जो गुरुभक्ति व सेवा की है सो प्रशंसनीय तो है ही किन्तु राजा कर्ण, धर्मराज, जनक, रामचन्द्र, भरत आदि का आपने स्मरण दिलाया है सो ठीक ही है, किन्तु जिसकी जैसी गति होती है उसकी वैसी ही मति होती है।

सारांश

जो भाग्यशाली व भविष्य में महान ऋद्धिशाली होगा वही तो सद्गुरु की सेवा करेगा। यह कार्य सामान्य पुरुषों (अभागी मनुष्यों) के लिये दुर्लभ है।

अन्तिम निवेदन

प्रमादादि वशान्मे स्याद्ग्रन्थेऽस्मिन स्खलनं बुधा; ।
पठन्तु शोधयित्वेति ग्रन्थ कर्तुः शुभामतिः ॥ ५० ॥

संस्कृतार्थ—भो बुधाः ज्ञानिनः यदि अस्मिन् ग्रन्थे प्रमाद-वशाद ज्ञानवशाद्वा स्खलनम् स्यात्तर्हि शोधयित्वा पठन्तु इति ग्रंथकर्तुः श्री कुंथुसागराचार्यस्य शुभामतिः निवेदनमस्ति ।

अर्थ—हे ज्ञानी जनो ! यदि इसग्रन्थ में प्रमाद से या अज्ञान से कोई स्खलन होगया हो तो आप सुधार कर पढ़ें ऐसा ग्रन्थ-कर्ता

का नम्र निवेदन है।

भावर्थ—सिद्धान्त, व्याकरण, काव्य आदि विद्या का अन्त नहीं है इसलिये इस ग्रन्थ के अन्दर कोई स्खलन भाग रह गया हो तो उसे शुद्ध कर पढ़ें। केवल पढ़ें ही नहीं किन्तु आचरण करें क्योंकि केवल विचार करने व बोलने मात्र से कार्य की सिद्धि नहीं होती है। किन्तु तद्वत् आचरण करने से ही होती है।

अंतिम कामना

यह 'मनुष्य कृत्य सार' नामक ग्रन्थ सम्पूर्ण मानव समाज के कल्याणके लिये बनाया है सो यह ग्रंथ व ग्रन्थकर्ता पूज्यपाद विद्वद्वर्य आचार्य श्री कुंथुसागरजी महाराज तथा डूंगरपुर राज्य के नरेश धर्मनिष्ठ, दयापालक, प्रजावत्सल श्री लक्ष्मणसिंहजी महाराज प्रजा को व विश्व को सुख तथा शांति देते हुये आचन्द्रदिवाकर पर्यन्त जयवन्त रहें यही हमारी (समस्त प्रजा की) देवाधिदेव त्रैलोक्याधिपति परम परमात्मा से प्रार्थना है।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

॥इति श्री सच्चारित्रचूड़ामणि विद्वद्वर्याचार्यवर्य श्री कुंथुसागर विरचितोऽयं 'मनुष्यकृत्यसारः' ग्रंथः समाप्तः॥